॥ श्रीहरिः ॥

681

रहस्यमय प्रवचन

जयदयाल गोयन्दका

॥ श्रीहरिः ॥

रहस्यमय प्रवचन

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

जयदयाल गोयन्दका

॥ श्रीहरि: ॥

निवेदन

वर्तमानमें मानव-जीवन भौतिक सुख-समृद्धिकी ओर विशेष आकर्षित एवं आँख मूँदकर अग्रसरित होनेके कारण अशान्त, दिग्भ्रमित, लक्ष्यसे च्युत एवं किंकर्तव्यविमूढ़ है। परिणामत: आज मनुष्य आत्मकल्याण अथवा परमात्म-प्राप्तिके अपने वास्तविक लक्ष्यसे भटककर भौतिक उन्नतिको ही अपना एकमात्र प्राप्तव्य मान परमात्माकी अमूल्य देन—इस मानव-देहका वह दुरुपयोग ही नहीं, अपितु अपने लिये बड़े भारी दु:खों और अनजानेमें ही अन्तहीन यातनाओंका सृजन कर रहा है। एतदर्थ इस विषम, दु:खद और सर्वथा चिन्तनीय परिस्थितिमें सच्छास्त्रोंका अनुशीलन और संत-महापुरुषोंका मार्ग-दर्शन ही हमारे (हम सबके) लिये एकमात्र विकल्प तथा कल्याणकारी उपाय है।

प्रस्तुत पुस्तक—'रहस्यमय प्रवचन' तत्त्वज्ञ मनीषी तथा आध्यात्मिक चेतना-पुरुष एवं ('कल्याण' के माध्यमसे अपने आध्यात्मिक विचारपूर्ण लेखोंद्वारा) आप सबके सुपरिचित ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके कतिपय अप्रकाशित प्रेरणाप्रद पुराने प्रवचनोंका संकलन है, जिन्हें लिपिबद्ध करके लेखरूपमें छापा गया है। इसके लिये बहुत समयसे अनेक श्रद्धालु तथा प्रेमीजनोंका विशेष प्रेमाग्रह था। भगवत्प्रेरणानुसार इसे अब 'सर्वजनहिताय'—आप सबकी सेवामें प्रस्तुत करते हुए हम सात्त्विक आनन्द एवं कृतकार्यता अनुभव कर रहे हैं।

यह लेख-संग्रह जीवन्मुक्त मनीषीद्वारा अभिव्यक्त अनेक लौकिक तथा पारलौकिक (आध्यात्मिक) विषयोंपर सरल, सुबोध भाषामें शास्त्रानुमोदित, स्वानुभूत उन विचारों और सिद्धान्तोंका दिग्दर्शन है, जिसे उन्होंने समय-समयपर जनहितार्थ अपने प्रवचनोंके माध्यमसे उद्‌घाटित किया था। हमें विश्वास है कि सभी श्रद्धालु, ईश्वरविश्वासी, आस्तिक महानुभावों एवं कल्याणकामी सत्पुरुषोंके लिये इसकी प्रेरणाप्रद बातें उपयोगी मार्ग-दर्शक सिद्ध हो सकती हैं। अतएव सभीसे हमारा यह सादर विनम्र अनुरोध है कि वे इसे एक बार अवश्य पढ़ें और दूसरोंको भी पढ़नेके लिये प्रेरित करके सद्भावोंके प्रचार-प्रसारमें सहायक बनें। अधिकाधिक लोगोंको विशेष लाभ उठाकर पुस्तककी उपयोगिता अवश्य सिद्ध करनी चाहिये।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

रहस्यमय प्रवचन

ग्रन्थका जो जितना आदर करेगा वह उससे उतना ही लाभ प्राप्त करेगा। उसके महत्त्वको समझनेवाले साधु पुरुष ग्रन्थके लिये शुद्ध आसन देते हैं, उसे वस्त्रसे लपेटकर रखते हैं, अपनेसे ऊँचा आसन देते हैं। कुछ वर्षों पहले श्रीमद्भागवतका सप्ताह करानेवाले भाई लोग बहुत ही आदरके साथ श्रीमद्भागवतको अपने सिरपर रखकर गाजे-बाजेके साथ शहरमें हरिकीर्तन करते हुए घुमाते थे और पाठ करनेवाले विद्वान् पण्डित भी बड़े ही आदरसे उस भागवतकी पुस्तकको अपनेसे ऊँचे आसनपर रखकर पाठ करते थे। अभी भी यह प्रणाली किसी अंशमें है—इस प्रक्रियासे महान् लाभ होता है। इसी प्रकार गंगाजीका आप जितना आदर करेंगे गंगाजीसे आपको उतना लाभ मिलेगा। किसी महात्मा पुरुषका आप जितना आदर करेंगे उस महात्मासे आपको उतना ही लाभ प्राप्त होगा। इसी प्रकार गीताका आप जितना आदर करेंगे, उतना ही लाभ आपको मिलेगा। भगवान् स्वयं गीताकी कितनी प्रशंसा करते हैं, कहते हैं—

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥

(गीता १८।६८)

'यह गीताशास्त्र परम गोपनीय है, गुह्यतम है, जो मेरे भक्तोंमें इसके अर्थकी व्याख्या करेगा, मूलकी व्याख्या करेगा अथवा इसको समझायेगा, इसका प्रचार करेगा वह मेरेमें परम भक्ति करके मुझको ही प्राप्त होगा, इसमें कोई शंकाकी बात नहीं।'

यदि इस विषयमें शंका हो कि क्या इसका इतना माहात्म्य है? तो इसमें शंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि भगवान् यह स्वयं कहते हैं कि इसमें कोई शंका नहीं करनी चाहिये। इतना कहकर भगवान् आगेके श्लोकमें पुनः कहते हैं—

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥

(१८।६९)

जो इस प्रकार गीताके अर्थ और भावोंका व्याख्यानद्वारा प्रचार करता है, उसके समान संसारमें मेरा प्यारा काम करनेवाला दूसरा और कोई नहीं है। भगवान् यह भी कहते हैं कि भविष्यमें उससे बढ़कर हमारा प्यारा कोई होगा भी नहीं। गोपियोंके विषयमें भगवान्‌ने कहा है कि गोपियाँ सबसे बढ़कर मेरी भक्त हैं, किंतु यह नहीं कहा कि इनसे बढ़कर भविष्यमें और कोई भी मेरा भक्त नहीं होगा।

जिस दिन मैंने इन श्लोकोंका पाठ किया, अर्थ समझा, मुझपर इसका कुछ प्रभाव पड़ा। मैंने सोचा—यह काम सबसे बढ़कर है। बहुत वर्ष पूर्व मैंने भगवन्नामके माहात्म्यपर एक लेख लिखाया था।* उसमें मैंने यह बात दिखलायी थी कि भगवन्नामका जप करनेसे महान् लाभ होता है। भगवन्नामके जपसे जो लाभ होता है और इससे मुझे यत्किंचित् लाभ हुआ है, एकमात्र गीताको छोड़कर ऐसा लाभ और किसीसे मुझे नहीं हुआ और मैं क्या कहूँ। भगवान्‌के नामका जप, उनके स्वरूपका ध्यान, गीताजीका स्वाध्याय एवं गीताका विवेचन तथा विचार—इन तीनोंसे प्रत्यक्ष लाभ हो सकता है और मैं यह कह सकता हूँ कि यत्किंचित् लाभ मुझे हुआ भी है। यदि आप अभ्यास करें तो इससे आपको भी लाभ हो सकता है। इस विषयमें मेरा यही कहना है कि जिस समय गीताका पाठ हो, अर्थकी व्याख्या हो या गीताके विषयपर व्याख्यान

---

* यह लेख 'ईश्वर-साक्षात्कारके लिये नामजप सर्वोपरि साधन है' शीर्षकसे तत्त्वचिन्तामणि भाग-१ (कल्याणप्राप्तिके उपाय) पुस्तकमें छपा है।

हो उस समय कम-से-कम पाँच-सात मिनट वहाँ अपना समय देकर गीताजीका आदर रखना ही चाहिये।

एक बात और मैं आपको विशेषरूपसे कहता हूँ। मान लें मैं व्याख्यान दे रहा हूँ और मेरे व्याख्यानके समाप्त होनेके बाद दूसरे किसी सज्जन—चाहे गृहस्थ हों या साधु—उनका यदि व्याख्यान हो तो मेरे जो प्रेमी हैं, जिनकी मुझपर दया है उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे उठें नहीं। यदि मैं उठूँ तो मेरे साथ एक आदमी उठ सकता है। वह भी इसलिये कि रात्रिके समय मुझे बहुत ही कम दीखता है। इसीलिये दिनमें भी मैं एक आदमी रख लेता हूँ, जैसे अन्धा आदमी रख लेता है। ज्यादा आदमियोंकी मेरे साथ उठनेकी आवश्यकता नहीं। यदि मेरे साथ ज्यादा आदमी उठें और मेरे बादमें दूसरे व्याख्यानदाताका व्याख्यान हो तो उसमें मैं केवल उसका ही अपमान नहीं समझता बल्कि मैं अपना भी अपमान समझता हूँ। इस बातपर सभीको दूसरे द्वारा व्याख्यान देनेके समय ध्यान देना चाहिये, चाहे कोई हो, सबका आदर करना चाहिये। मान लो कोई काम हो तो पाँच-सात, दस-पंद्रह मिनट बाद नम्रतापूर्वक उठ सकते हैं, इस प्रकार कि व्याख्यानमें व्यवधान न हो। नहीं तो जो व्याख्यान देनेवाला है उसकी ही अवहेलना नहीं है, बल्कि उससे ज्यादा पूर्वके व्याख्यानदाताकी अवहेलना है। एक महत्त्वपूर्ण बात कहता हूँ। यदि मैं व्याख्यान समाप्त कर दूँ और उसके बाद यदि दूसरा व्याख्यान देनेवाला हो तो उस समय जो-जो भाई मेरे संगके लिये या मेरेसे बात करनेके लिये उठकर जायँ तो मेरा यह कर्तव्य है कि मैं उनसे बात नहीं करूँ, मैं उन्हें कहूँ कि आप वहीं जाकर बैठें और मुझसे बात करनी है तो दूसरे समयमें करें। यह बड़े रहस्यकी बात है, महत्त्वकी बात है, इसे आप गम्भीरतासे सोचेंगे तो आपको इसका रहस्य

मालूम होगा। आँख खुल जायगी, मैंने यह एक चेतावनी दी है। हरेक व्याख्यानदाताको इसके ऊपर विशेष ध्यान देना चाहिये और सुननेवाले भाइयोंको भी।

एक और भी मैं रहस्यकी बात बतलाता हूँ। व्याख्यानके समय जब मेरे ऊपर ही भार दे दिया जाता है कि आप जो ठीक समझें वही बात कहें तो उस समय मुझे विशेष विचार करके कहना पड़ता है, किंतु जो भाई लोग कह देते हैं या सम्मति दे देते हैं कि 'इस विषयमें कहें' तो उसमें मेरेपर कुछ कम भार रहता है। पर जब मुझे ही कहना पड़ता है तो मैं सबको दृष्टिमें रखकर कहता हूँ। बातके कहनेमें जितने भाई श्रोता होते हैं, उनका जो प्रेम है, उनका जो विश्वास है, एक तो वह कारण होता ही है और दूसरा हमारे हृदयका जो भाव है, वह कारण है। आपको रहस्यकी बात बतायी जाती है कि आपकी सेवामें जो बात निवेदित की जाती है, वह सब गीता-रामायण आदि शास्त्रोंके आधारपर ही कही जाती है।

गीता साक्षात् भगवान्‌के वचन हैं। वेद ब्रह्माजीके वचन हैं और बाकी शास्त्र ऋषियोंके वचन हैं। वेदोंके मन्त्रोंके अर्थका जिसको प्रथम ज्ञान होता है, वही उस मन्त्रका ऋषि समझा जाता है। सूत्रमें आया है—'**मन्त्रद्रष्टारो ऋषयः।**' ऋषि संज्ञा क्यों दी गयी है? उसका क्या अर्थ है? क्या मतलब है? ऋषि शब्दका अर्थ है वेदमन्त्रोंका द्रष्टा और उनका अनुभव करनेवाला। जैसे गायत्री-मन्त्रके विश्वामित्र ऋषि हैं। विश्वामित्र ऋषिको गायत्री-मन्त्रके अर्थका विशेष अनुभव हुआ। भगवान्‌के जो वचन हैं, ऋषियोंके जो वचन हैं, उनके आधारपर जो सार बात है और उसमें भी जो बहुत उपयोगी बात है, उसमेंसे भी सार निकालकर—उसका संक्षेप करके जो विशेष लाभकी बात समझी जाती है वही बात कही जाती है। भगवान्‌के

जो वचन हैं और ऋषियोंके जो वचन हैं उनके पालन करनेसे, उनके अनुसार आचरण करनेसे साधकका कल्याण हो जाता है, इसमें कोई भी शंकाकी बात नहीं है। यदि मैं इसके अनुसार बन जाऊँ यानी अनुष्ठान करूँ, साधन करूँ तो मेरा कल्याण हो सकता है और आप यदि उसके अनुसार साधन करें तो आपका भी कल्याण हो सकता है। इसके ऊपर आपलोगोंको विशेष विश्वास करना चाहिये। मैं एक साधारण आदमी हूँ, इसलिये मेरी गारण्टीका कोई मूल्य नहीं है, किंतु यदि आप मूल्य समझते हों तो इसके लिये मैं गारण्टी भी दे सकता हूँ, उसके कल्याणमें कोई शंकाकी बात नहीं है। मेरे जो आचरण हैं उन्हें आदर्श मानकर मैं इतनी बात जोरसे नहीं कह सकता कि मेरे आचरणोंके अनुसार यदि कोई दूसरा भाई आचरण करे तो उसका कल्याण हो सकता है। यह बात मैं कह भी नहीं सकता और इसकी गारण्टी भी नहीं दे सकता। पर संसारमें जो ऋषि-मुनि हुए हैं उनमें भी जो महापुरुष हुए हैं, कारक पुरुष, अधिकारी पुरुष हुए हैं, संसारमें जो जीवन्मुक्त महात्मा हैं, जो भगवान्‌के सच्चे भक्त हैं, जिनको भगवान्‌की प्राप्ति हो चुकी है, ऐसे भक्त या सच्चे योगी जिन्होंने योगके द्वारा उस परम तत्त्वको समझ लिया है यानी परमात्माकी प्राप्ति कर ली है, इन सबको महापुरुष मानते हैं, भगवान् तो महापुरुष हैं ही, और भगवान्‌ने जिन पुरुषोंको संसारके कल्याणके लिये, संसारके उद्धारके लिये ही भेजा है वे तो महापुरुषोंके भी महापुरुष हैं। ऐसे महापुरुषोंके वचनका पालन करनेसे और उन महापुरुषोंको आदर्श मानकर उनका अनुकरण करनेसे भी मनुष्यका कल्याण हो सकता है, इसके लिये जोर दिया जा सकता है। ऐसे ही गीताका अनुसरण करनेके लिये भी कहा जा सकता है, क्योंकि ये भगवान्‌के वचन हैं। भगवान्‌ने

गीतामें कहा है उसके आधारपर कहनेमें कहीं कोई भी आपत्ति नहीं आती। उन्होंने स्पष्ट उद्घोष करते हुए कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

(४।७)

भगवान्ने कहा कि 'जब-जब धर्मकी हानि, पापकी वृद्धि होती है, तब-तब मैं अवतार लेता हूँ। अवतार लेकर दुष्टोंको दण्ड देता हूँ, साधुओंका उद्धार करता हूँ, धर्मकी स्थापना करता हूँ।'

भगवान्के वचनोंका पालन और उनका अनुकरण करना चाहिये, इसी प्रकार भगवान्ने गीताके तीसरे अध्यायके २१वें श्लोकमें कहा है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

श्रेष्ठ पुरुष यानी महापुरुष जो-जो आचरण करते हैं उनके आचरणके अनुसार दूसरे पुरुष अपनी आत्माके कल्याणके लिये आचरण करें तो उनका कल्याण निःसंदेह हो सकता है। ये महापुरुष जिस बातको प्रमाणित कर देते हैं तथा जिस बातको कहते हैं कि यह बात सत्य है, इत्थंभूत है, उसके अनुसार लोग वर्तते हैं। अपनी आत्माके कल्याणके लिये हमलोगोंको भी इसी प्रकार आसक्तिरहित होकर कर्म करना चाहिये। इसी प्रकार भगवान् भी स्वयं अपने कृत्यका अनुकरण करनेके लिये कहते हैं।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥

(४।१३)

भगवान् कहते हैं कि चातुर्वर्ण्य यानी चारों प्रकारके वर्णों—

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रकी मेरे द्वारा ही रचना हुई है। भगवान्से ब्रह्माजी पैदा हुए हैं। ब्रह्माजीके मुखसे ब्राह्मण पैदा हुए, भुजासे क्षत्रिय, जंघासे वैश्य और चरणोंसे शूद्र पैदा हुए। ब्रह्माजी हुए सबके पिता और भगवान् हुए पितामह। भगवान् कहते हैं कि मैं ही पितामह हूँ। इसीलिये ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुए अथवा भगवान्से उत्पन्न हुए, भगवान् ही आदि होनेके कारण उन दोनोंमेंसे किसीसे उत्पन्न हुए—यह कहनेमें कोई दोष नहीं है। जैसे मेरा लड़का मेरी संतान और मेरा पोता मेरी संतान। वर्णका दूसरा अर्थ होता है—चार प्रकारके प्राणी—स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज और जरायुज। पसीनेसे जो पैदा होते हैं वे स्वेदज हैं, अण्डेसे जो पैदा होते हैं वे अण्डज हैं, पृथ्वी और जलके सम्बन्धसे जो पैदा होते हैं वे उद्भिज्ज और जेरके साथ—झिल्लीके साथ जो पैदा होते हैं वे जरायुज कहलाते हैं। इन चारों प्रकारकी आकृतिवाले प्राणी उनके पूर्वके गुण और कर्मके अनुसार मेरे द्वारा रचे गये हैं।

गुण और कर्मोंके विभागके अनुसार चारों प्रकारके वर्ण मेरे द्वारा रचे गये हैं यानी सारे जीव, सारे प्राणी मेरे द्वारा रचे गये हैं। इसीलिये भगवान्ने कहा—हे अर्जुन! उसका कर्ता होते हुए भी मुझे अकर्ता ही जान। क्योंकि वास्तवमें उसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है और मुझमें कर्तापनका कोई अभिमान नहीं है। इसीलिये उसका कर्ता होनेपर भी तू मुझे अकर्ता ही मान। फिर समझाते हैं—

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते॥

(४।१४)

मुझे कर्मोंके फलकी स्पृहा नहीं है—इच्छा नहीं है, इस कारण कर्म मुझे नहीं बाँध सकते। मैं कर्मोंके द्वारा लिपायमान

नहीं होता। जो मुझे इस प्रकारसे जानता है वह भी कर्मोंसे कभी लिपायमान नहीं होता यानी कर्मोंके द्वारा नहीं बँधता। आगे कहते हैं—

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्॥

(४।१५)

कर्मोंमें कर्तापनका अभिमान न रहनेके कारण और कर्मोंमें स्पृहा न रहनेके कारण, फलकी इच्छा न रहनेके कारण कर्म मुझे नहीं बाँध सकते। इस प्रकार जानकर पूर्वमें मोक्षकी इच्छावाले, कल्याणकी इच्छावाले लोगोंके द्वारा कर्म किये गये हैं। पूर्वमें मुमुक्षुओंने जिस उद्देश्यसे कर्म किये हैं तू भी इसी प्रकारसे इस रहस्यको समझकर कर्मोंका आचरण कर।

भगवान् शास्त्रविहित कर्मोंका जो आचरण करते हैं, उसका और मतलब ही क्या है? भगवान्के आदेशका पालन करना, अनुकरण करना और महापुरुषोंके आचरणका अनुकरण करना तो बहुत ही उत्तम है और उनके वचनोंका पालन करना उससे भी बढ़कर है। उससे बढ़कर कैसे? मान लो कोई एक महापुरुष हैं और उन्होंने आपको आज्ञा दी कि आप अपने माता-पिताकी आज्ञाका पालन करें, उनकी सेवा करें, प्रातःकाल और सायंकाल संध्या और गायत्री भी किया करें तथा प्रतिदिन गीताजीके एक अध्यायका पाठ जरूर किया करें, यह उनकी आज्ञा हुई। इन बातोंमें जितनी बातें कहीं, उनमें एक या दोकी स्वयंमें कमी है। आपको तो कहा कि तुम किया करो और स्वयं वे करते नहीं। मतलब यह कि जितनी पाँच-सात-दस बात कही उनमें एक या दो बात वे स्वयं नहीं करते तो उसमें उनका अनुकरण करना चाहिये या आज्ञाका पालन करना चाहिये? उनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये, क्योंकि अनुकरण करनेकी बात जो

साधारण जनसमूहमें कही जाती है—ब्राह्मणको भी कही जाती है, क्षत्रियको भी कही जाती है, वैश्य और शूद्रको भी कही जाती है यानी चारों वर्णवालोंको कही जाती है। जो जिस वर्णका होगा वह अपने ही वर्णके अनुसार आचरण करेगा सब वर्णके अनुसार तो आचरण करेगा नहीं। व्याख्यानमें तो ब्राह्मणका भी कर्तव्य बतलाया जाता है, क्षत्रियका भी बतलाया जाता है, साधुका भी बतलाया जाता है, गृहस्थका भी बतलाया जाता है, वानप्रस्थीका भी बतलाया जाता है और ब्रह्मचारीका भी बतलाया जाता है। बतलानेवाला वक्ता साधु है या गृहस्थी है या वानप्रस्थी है—वह तो जिस आश्रममें है, उसीके अनुसार करेगा। साधुओंमें भी अनेक सम्प्रदाय हैं, उनमें भिन्न-भिन्न, अलग-अलग व्यवहार हैं, पद्धति हैं। इसलिये कोई महापुरुष हमें हुक्म देता है और वह स्वयं आचरण भी करता है तो दोनोंका ही अनुकरण करना चाहिये। दोनोंके ही अनुसार हमें चलना चाहिये, किंतु जब परस्परमें मतभेद हो जाय कि आचरण और आज्ञामें भिन्नता है, ऐसी स्थिति होनेपर उन दोनोंमें व्याख्यानसे उपदेश और उपदेशसे आदेश बलवान् है—उनका हुक्म बलवान् है। मान लो कोई एक बड़ा हाकिम है, उसने एक आदेश निकाल दिया कि आज राजा साहबके लड़का हुआ है सब कोई उत्सव मनाओ और जो उत्सव नहीं मनायेगा उसे दण्ड दिया जायगा। ऐसी स्थितिमें राजाके राज्यमें रहनेवाले सभी भाइयोंको उत्सव मनाना चाहिये। यदि ऐसा आर्डर निकालकर हाकिम स्वयं उत्सव नहीं मना रहा है और हाकिमकी इस बातको देखकर हम भी नहीं मनावें तो हमें कैद होगी। क्या हाकिमको भी होगी? हाकिमकी कैद हो या न हो यह तो हाकिम जाने, किंतु हमारी तो होगी ही। यदि हाकिमकी भी हो और हमको भी हो तो दोनों जेलखानेमें जायँगे। इस प्रकार करनेसे हाकिमके कैद होनेसे हमें

क्या लाभ मिलेगा? इससे यह बात सिद्ध होती है कि हाकिमके हुक्मका पालन करना चाहिये, न कि उनका आचरण। प्राय: हाकिम स्वयं अपने हुक्मका पालन करता है। यदि वह अपने कानूनका पालन नहीं करे तो उसके लिये अधिक दण्ड है। वकील, वैरिस्टर, हाकिम यदि कानूनका पालन नहीं करें तो सरकारसे इनको अधिक दण्ड दिया जा सकता है, क्योंकि ये अधिक दण्डके पात्र होते हैं। इसी प्रकार जो ज्ञानी है, योगी है, महात्मा है, उच्च कोटिका पुरुष है वह यदि अपने कथनके अनुसार आचरण नहीं करता तो उसपर अधिक भार है, उसको ज्यादा दण्ड मिलना चाहिये। इस बातको ध्यानमें रखकर ज्ञानी महात्माओंके लिये भी भगवान्‌ने प्रेरणा दी—

सक्ता: कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्॥

(३।२५)

हे भरतवंशी अर्जुन! जैसे कर्मोंके फलकी इच्छा रखनेवाला सकामी अज्ञानी मनुष्य दिलचस्पीके साथ कर्मोंका आचरण करता है, उसी तरह ज्ञानी महात्मा पुरुषको भी वैसी ही दिलचस्पीसे कर्म करना चाहिये। यद्यपि उसके लिये कोई कर्तव्य नहीं है तो भी उसको करना चाहिये। क्यों करना चाहिये? उसकी आत्माका तो उद्धार हो गया; किंतु सबका तो नहीं हुआ न! अत: लोकसंग्रहकी इच्छा रखते हुए उसे कर्म करना चाहिये। एक सकामी पुरुष जिस प्रकार यज्ञ, दान, तप, सेवा, उपवास-व्रत या तीर्थ आदि करता है उसी प्रकार उसे करना चाहिये। सकामी आदमीको यह भय रहता है कि यदि मैं सुचारुरूपसे विधिके साथ, श्रद्धाके साथ नहीं करूँगा तो उसका फल मुझे नहीं मिलेगा। वह फलके लिये ही करता है, इसलिये विशेष सावधानीसे करता है, उसकी सावधानी

और तत्परता लेनी चाहिये। इस बातके लिये भगवान्ने जगह-जगह चेतावनी दी है। कहते हैं—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

(२।४७)

—अर्जुन! तेरा कर्म करनेमें अधिकार है अर्थात् तुम्हें कर्म करना चाहिये, पर कर्मके फलमें तुम्हारा अधिकार नहीं है। यह भगवान्के ऊपर निर्भर करता है, कर्मोंके अनुसार फलदाता भगवान् हैं। तुम्हारा इसमें बिलकुल हाथ नहीं है, कर्ताका बिलकुल हाथ नहीं है। भगवान् अर्जुनको फिर कहते हैं कि कर्मके फलका हेतु भी तू मत बन। कर्मके फलका हेतु कौन बनता है? जिसकी कर्मोंमें आसक्ति है, कर्मोंमें वासना है, कर्मोंमें कर्तापनका अभिमान है, जिसमें अहंता-ममता है, वह कर्मोंके फलका हेतु बनता है तू ऐसा भी मत बन। फिर इसमें स्वाभाविक ही यह बात पैदा होती है कि मैं कर्म करूँ भी क्यों? यह बात सकामीके लिये नहीं आती, क्योंकि सकामीको तो भय रहता है कि मैं श्रद्धासे नहीं करूँगा, शास्त्रविधिके अनुसार नहीं करूँगा तो मुझे फल नहीं मिलेगा। किंतु निष्कामी फल तो चाहता ही नहीं। अतः उसके गड़बड़ होनेकी सम्भावना है, अवहेलना होनेकी सम्भावना है। इसलिये भगवान् जोर देते हुए कहते हैं कि अर्जुन! कर्मके न करनेमें भी तुम्हारी प्रीति मत हो। जैसे कर्मके करनेमें प्रीति बाँधनेवाली है, वैसे ही कर्म न करनेमें भी प्रीति बाँधनेवाली है। सिद्ध महात्मा पुरुषके लिये तो कर्मोंके करनेसे भी कोई प्रयोजन नहीं और कर्म न करनेसे भी कोई प्रयोजन नहीं। भगवान्ने कहा है—**'नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।'** (३।१८) कर्मोंके करने और न करनेमें उसे कुछ भी प्रयोजन नहीं है कि इसमें कहीं अवहेलना न

हो जाय। कोई अपनेको ज्ञानी मानकर कहे कि ज्ञानीको कोई कर्तव्य नहीं है—'**तस्य कार्यं न विद्यते**' मैं ज्ञानी हूँ, मेरे लिये कोई कर्तव्य नहीं है, ऐसा समझकर कहीं कर्मोंका त्याग न कर दे। उनके लिये एक दोहा प्रसिद्ध है—

ब्रह्मज्ञान उपज्यो नहीं, कर्म दिये छिटकाय।
तुलसी ऐसी आत्मा सहज नरकमें जाय॥

ब्रह्मज्ञान तो हुआ नहीं, कर्मोंमें तुच्छ बुद्धि होनेसे उसकी अवहेलना कर दी। तुलसीदासजी कहते हैं—ऐसे पुरुष सहजमें ही नरकमें चले जाते हैं, नरक जानेमें कोई परिश्रम नहीं होता।

इस विषयमें जो बात आपकी सेवामें प्रार्थनाके रूपमें निवेदन की जाती है, प्रायः शास्त्रोंके आधारपर ही कही जाती है। यदि हम कहें कि अपने अनुभवके आधारपर हम कहते हैं तो हमारा यह कहना ***'छोटे मुँह बड़ी बात'*** होगी। महापुरुषोंके वचनोंके आधारपर कहा जाता है। महापुरुषोंका अनुभव है और इन शास्त्रोंमें महापुरुषोंका अनुभव जो चमक रहा है उसके आधारपर ये बातें कही जाती हैं तथा साथमें यह भी कहा जाता है कि उसका अनुकरण करनेसे मनुष्यका निश्चय ही कल्याण हो जाता है, इसमें कोई शंकाकी बात नहीं। आप उसका पालन करें तो आपका उद्धार हो सकता है और मैं पालन करूँ तो मेरा उद्धार हो सकता है। इस कथनका रहस्य यह है कि यदि मैं केवल यह कहूँ कि आप इसका पालन करें तो आपका उद्धार हो सकता है। इसका मतलब तो यह हुआ कि मेरा तो उद्धार हो चुका। कोई ऐसा अर्थ न निकाल ले। इसलिये मैं अपनेको भी इसमें मिला लेता हूँ कि कोई भी इसका पालन करे तो उसका उद्धार हो सकता है। वक्ताको अहंकारकी बात—अभिमानकी बात बचाकर बोलनी चाहिये। मैं एक साधारण आदमी हूँ, मेरा अनुकरण भी साधारण है। मैं उसका उदाहरण नहीं दे

सकता। किंतु संसारमें जो महापुरुष हुए हैं और हैं उन महापुरुषोंके भी महापुरुष ईश्वर और उनके भेजे हुए संसारके कल्याणके लिये जो पुरुष अधिकार लेकर आते हैं—तथा पुण्य-पापसे जिनका यहाँ जन्म हुआ है और अपने साधनोंके द्वारा ईश्वरकी कृपासे वे परमात्माको प्राप्त हो चुके हैं उन महापुरुषोंके वचनोंके आधारपर कहता हूँ। भक्तिके साधनद्वारा, ज्ञानके साधनद्वारा, योगके साधनद्वारा या निष्काम कर्मके साधनद्वारा जो मुक्त हो चुके हैं, उन महापुरुषोंका हम अनुकरण करें। उनकी आज्ञाके अनुसार चलें तो हमारा कल्याण हो सकता है। तीसरी बात यह कही जाती है कि जो हमारी सेवा करे, सेवा क्या? आज्ञाका पालन या किसी प्रकारसे मदद—यह सेवा है। उसके लिये मैं यह नहीं कह सकता कि उसका कल्याण हो जायगा। क्योंकि कल्याण करनेकी तो हमारी सामर्थ्य है नहीं, इसलिये यह मैं कैसे कह सकता हूँ। यह जरूर है कि मैं उसका आभारी हूँ, यह मुझे अवश्य ही कहना चाहिये। चौथी बात यह है कि मैं जिसका विरोध करता हूँ, जिसका निषेध करता हूँ और उस कामको कोई आदमी करे तो वह मेरे साथ भी अनुचित व्यवहार करता है, मेरे साथ उसका अत्याचार है और वह शास्त्रोंकी भी अवहेलना करता है। क्योंकि प्राय: आपकी सेवामें शास्त्रोंके आधारपर ही बात कही जाती है। जैसे मैंने कह दिया कि किसी भी समय किसी भी स्थितिमें किसी भी आदमीको हमारा चित्र नहीं लेना चाहिये। इसी प्रकारकी बहुत-सी बातें हैं, जिनका निषेध किया जाता है, विरोध किया जाता है। एक दिनकी बात है जहाँ व्याख्यान होता था, वहाँ एक आदमी उस जगहकी धूल उठाने लग गया। दूसरेने उसे रोका, बोला कि यह मनाही है। इस प्रकार कोई आदमी वहाँकी धूल आदरसे भी लेता है तो वह पाप करता है, हमारा अपमान करता है। यदि वह हमारा

लक्ष्य करके हमारे निमित्तसे ले तो। क्योंकि इस धूलिकी वह शक्ति नहीं है, इसलिये अनुचित है उस धूलसे यदि किसीका कल्याण हो, तब हम मना नहीं करेंगे किंतु शास्त्रोंमें जो महापुरुष हुए हैं, या भगवान्‌के परिकर हैं या महापुरुषोंके भी महापुरुष भगवान् हैं, उनके चरणोंकी धूलिकी महिमा आयी है, उसमें लोगोंकी अश्रद्धा हो जायगी और उसका तिरस्कार होगा। जहाँ हम बैठे हैं, वहाँकी धूलि ले जाय तो उस धूलिकी वह शक्ति नहीं है कि उससे किसीका कल्याण हो जाय, फिर उससे कल्याण होगा नहीं तो उसकी दृष्टि उस ओर जायगी कि शास्त्रोंमें महापुरुषोंके चरणोंकी धूलिकी यह महिमा है? इस बातको समझते हुए हमने इसका निषेध किया। यदि हम महापुरुष बन करके अपने चरणोंकी धूलि दे रहे हैं तो इस कार्यके लिये हम दण्डनीय हो जाते हैं, अपराधी हो जाते हैं। इस बातको ध्यानमें रखकर निषेध किया जाता है।

सत्संगमें वैराग्यकी, उपरतिकी, ज्ञानकी, वेदान्तकी, अद्वैतवादकी, परमात्माके निर्गुण-निराकारके ध्यानकी बातें अधिकांशमें हुआ करती हैं। किसी समय यदि दूसरा कोई प्रश्न कर लेता है तो भगवान्‌के तत्त्व-रहस्यकी बातें भी हो जाती हैं पर यदि किसी कारणसे फालतू प्रकरण चल जाता है तो सत्संगका समय नष्ट हो जाता है। हम नष्ट होना मानते हैं इसलिये कहते हैं नहीं तो सत्संगके लिये, सत्संगके उद्देश्यसे कोई भी आदमी कहीं जाता है तो उसका समय नष्ट नहीं समझा जाता। महापुरुषोंके भी महापुरुष जो भगवान् हैं, सत्संग करनेवाले उनके भक्त तथा गोपियाँ आदि—वे एक क्षण भी अपना समय बर्बाद नहीं समझा करती थीं। क्योंकि वे सारी क्रियाओंको भगवान्‌की लीलाके रूपमें देखा करती थीं। महापुरुषोंके भी महापुरुष भगवान् और भगवान्‌के भेजे हुए अधिकारी पुरुषोंके विषयकी जितनी भी

प्रशंसा की जाय उतनी ही थोड़ी है। उन पुरुषोंके दर्शन, भाषण, स्पर्श, वार्तालाप तथा चिन्तनसे हमलोगोंका कल्याण हो सकता है, हुआ है और अब भी हो सकता है तथा भविष्यमें भी होता ही रहेगा। भगवान् श्रीकृष्णने अवतार लिया, रामजीने अवतार लिया और बहुतोंका संग हुआ, किंतु सबके विषयमें ऐसी बात नहीं देखी गयी। कारण यह है कि भगवान् श्रीकृष्णमें, भगवान् श्रीराममें उनकी श्रद्धा नहीं थी। श्रद्धा नहीं होनेके कारण वे लाभसे वंचित रहे। महापुरुषों, अधिकारी तथा अवतारी महान् आत्माओंमें श्रद्धा होनेसे कल्याण अवश्य हो जाता है। यहाँतक कि उनके दर्शनसे ही कल्याण हो जाता है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

उस परमात्माका साक्षात् दर्शन होनेपर चिज्जड-ग्रन्थि—जड तथा चेतनकी ग्रन्थि खुल जाती है, सारे संशय मिट जाते हैं और सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। जिनका जन्म संसारमें पुण्य और पापसे हुआ है और अपने साधनोंके द्वारा जो मुक्त हुए हैं; ज्ञानयोगके द्वारा, भक्तियोगके द्वारा, कर्मयोगके द्वारा—वे महापुरुष हैं। उनके लिये ऐसी बात नहीं कही जा सकती, जैसी भगवान्के लिये कही जा सकती है। भगवान्के तो स्मरणसे उद्धार हो जाता है, नामके जपसे उद्धार हो जाता है, दर्शनसे हो जाय उसमें तो कहना ही क्या है!

(कैसेट नं० २९५)

उपासनासहित निष्काम कर्मयोग

निष्काम कर्मका विषय बहुत दामी है। निष्काम कर्म करनेसे परमात्माकी प्राप्ति बहुत ही शीघ्र हो सकती है।

गीताप्रेसमें काम करनेवाले भाई लोग गीताप्रेसको साधन बनाकर निष्काम कर्म करके अपनी आत्माका कल्याण कर सकते हैं। व्यापारी भाई निष्कामभावसे व्यापार करते हुए परमात्माको प्राप्त हो सकते हैं। हृदयमें जब निष्कामभाव हो जाता है तो उसकी बाहरकी सारी क्रिया निष्काम ही होती है। इसलिये निष्कामभाव ही अमृत है। परमात्मा अमृत है, आनन्दमय है, रसमय है। अतः निष्कामभाव अमृतकी प्राप्ति करानेवाला—परमात्माकी प्राप्ति करानेवाला होनेसे अमृतमय है। निष्कामभाव दूसरोंको भी बड़ा प्यारा लगता है। जिसके साथ निष्कामभावका व्यवहार किया जाता है उसको तो प्रिय लगता ही है, देखनेवालोंको भी प्रिय लगता है और बोलनेवालेको भी प्रिय लगता है। व्यवहार करनेवालेको व्यवहार प्रिय लगता है। निष्कामभाव हृदयमें, वाणीमें और क्रियामें भी होना चाहिये। यह खयाल रखना चाहिये कि जब निष्कामभाव हृदयमें होगा तो सब जगह अपने-आप ही व्यापक हो जायगा। हृदय दूषित होनेपर तो सारी क्रिया दूषित हो जाती है। निष्कामकी महिमा परमात्माके ध्यानसे भी बढ़कर बतलायी गयी है। भगवान्‌ने गीता (१२।१२) के उत्तरार्धमें कहा है—

'ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥'

अर्थात् ध्यानसे भी कर्मोंके फलका त्याग श्रेष्ठ है, क्योंकि त्यागसे तत्काल शान्ति मिलती है। कामनाका सर्वथा त्याग निष्कामभाव है। उससे भी उच्च कोटिका निष्कामभाव वह है जिसमें आसक्तिका त्याग हो, उससे भी बढ़कर वह निष्काम-

भाव होता है जिसमें ममताका त्याग हो और उससे भी बढ़कर निष्कामभाव होनेपर अहंकारका त्याग हो, उससे बढ़कर निष्कामभाव होनेपर अज्ञानका त्याग होता है; क्योंकि अज्ञान ही मूल कारण है। अज्ञानसे ही अहंकारकी उत्पत्ति होती है और अहंकारसे ही ममता होती है, जहाँ 'मैं' होता है वहाँ 'मेरा' होता है। जहाँ 'मैं' ही नहीं वहाँ 'मेरा' नहीं। चाहे वाणीसे 'मैं' कहो, किंतु यदि वहाँ अहंकार नहीं है तो उस 'मेरा' कहनेका कोई मूल्य ही नहीं है, इसलिये भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥

(२।७१)

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको स्पृहा, अर्थात् आसक्तिको, ममता और अहंकारको त्याग कर संसारमें विचरता है, वही शान्तिको प्राप्त होता है। इन सबके अभावमें केवल परमात्मा ही रह जाते हैं, उसकी परमात्मामें स्थिति हो जाती है, क्योंकि पूर्वमें यह बात भगवान्‌ने साफ बतला दी—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

(गीता २।६९)

सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये जो निशा है उसमें संयमी पुरुष जागते हैं और जिसमें संसारके मनुष्य जागते हैं अर्थात् संसारके मनुष्य विषयोंका उपभोग करते हैं वह मुनियोंके लिये निशा है। तात्पर्य यह कि जिनकी मन और इन्द्रियाँ अच्छी प्रकारसे वशमें हैं, संसारके विषयोंसे हटी हुई हैं और संसारमें विचरण करते हुए भी उनके साथ वास्तविक सम्बन्ध नहीं है—उनमें आसक्ति नहीं है उनके लिये यह संसार निशाके समान है। कहनेका आशय यह है कि इस संसारके जितने भोग हैं वह रात्रिके समान

हैं, उसपर उनका कोई असर नहीं होता। और जिस परमात्माके स्वरूपमें ज्ञानी-मुनि जागते हैं, वह सर्वसाधारणके लिये निशाके समान है अर्थात् उन लोगोंको पता ही नहीं कि परमात्मा क्या चीज है। इसलिये परमात्माके स्वरूपमें स्थिति और संसारमें कामना तथा आसक्तिका अभाव ब्राह्मी स्थिति है—

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥

(२।७२)

इस ब्राह्मी स्थितिको पाकर मनुष्य मोहको प्राप्त नहीं होता और अन्तकालमें भी यदि ऐसी स्थिति हो जाय तो वह पुरुष निर्वाण ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है अर्थात् उस सच्चिदानन्द ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। ब्रह्मके स्वरूपमें जो स्थिति है वही ब्राह्मी स्थिति है अर्थात् ब्रह्मके स्वरूपमें स्थिति और संसारसे जिसकी विरक्ति है, संसारमें जिसकी न कामना है, न आसक्ति है, न ममता है, न कर्मोंमें कोई अहंकारका भाव है ऐसा पुरुष स्थितप्रज्ञ है।

उसके लिये मैं आपको एक युक्ति बतलाता हूँ, उस युक्तिसे बहुत शीघ्र परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। परमात्माके स्वरूपमें स्थिति और हृदयमें निष्कामभावसे सारी क्रिया अहंकार, आसक्ति और कामनासे रहित हो जाती है; क्योंकि हृदयका जो भाव है वह व्यवहारमें आ जाता है तो बड़ा सुन्दर लगता है। हमको इस विषयमें क्या करना चाहिये? परमात्माके स्वरूपमें स्थित होकर व्यवहार करना चाहिये। बुद्धिके द्वारा उस परमात्माके तत्त्वको समझना चाहिये कि परमात्मा सत्-चित्-आनन्दघन है। वह परमात्मा सब जगह समानभावसे व्यापक है। नीचे लिखे श्लोकके अनुसार उस परमात्माके स्वरूपमें एकीभावसे स्थित हो जाय।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥

(गीता ६।३१)

भगवान् कहते हैं कि जो मनुष्य मुझ परमात्माको सारे भूतोंमें स्थित समझकर और मुझ परमात्मामें एकीभावसे स्थित होकर मुझे भजता है वह सब प्रकारसे बर्तता हुआ भी मुझ परमात्मामें ही बर्तता है। यानी परमात्मा सम्पूर्ण संसारमें सारे भूतोंमें समभावसे स्थित है—ऐसे परमात्मामें अपने-आपको लगा दे यानी तन्मय हो जाय, अपने-आपको परमात्मामें मिला दे यानी परमात्मा और अपने-आपकी एकता-सी कर दे। ऐसे परमात्माके स्वरूपमें एकीभावसे स्थित हो जाय यानी अपने-आपको परमात्मामें समर्पण कर दे। इसके लिये संसारमें कोई उदाहरण नहीं है, किंतु जैसे कोई कहे कि ये तो देखनेके ही दो हैं, वस्तुतः एक ही हैं। भगवान् स्वयं कहते हैं कि मैं ही अर्जुन हूँ और अर्जुन ही मैं हूँ। इस प्रकार समझकर परमात्मामें ऐसी एकता कर दे कि मानो परमात्माका अंग ही बन जाय। जैसे शरीरमें अपनी तन्मयता है, मानो शरीर मैं हूँ। वास्तवमें मैं शरीर नहीं हूँ, किंतु प्रतीति ऐसी होती है कि शरीर मैं हूँ। यहाँ शरीरके स्थानमें परमात्मा हैं तथा आत्माके स्थानमें आत्मा है ही। साधककी उस परमात्माके स्वरूपमें ऐसी स्थिति हो जाय कि परमात्मा अपनी आत्मा ही दीखने लग जाय। इस प्रकार परमात्माकी शरण होकर, परमात्मामें स्थित होकर, परमात्माको आधार और अपनेको आधेय मान ले, जैसे आकाश आधार है और बादल है उसमें आधेय। परमात्मा अनन्त हैं और आप हैं अल्प। इस प्रकार परमात्माके स्वरूपमें स्थित होकर निष्काम-भावसे सारी क्रिया करे। सारे संसारमें परमात्मा व्यापक हो रहे हैं, अतः परमात्मा अनन्त हैं और सेवा करनेवाले आप एकदेशीय

हैं। परमात्मा अनन्त हैं तथा मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ तथा शरीर ये औजार हैं—साधन हैं। इनके द्वारा सर्वव्यापी परमात्माकी सेवा करें। तात्पर्य यह कि इनके द्वारा होनेवाले कर्मोंसे उस परमात्माकी सेवा करें और सेवा करनेके समय ऐसा भाव रखें कि मुझमें सेवा करनेकी जो शक्ति है वह परमात्माकी दी हुई शक्ति है। जिन मन-बुद्धि और इन्द्रियोंके द्वारा मैं सेवा कर रहा हूँ ये सब औजार भी परमात्माके हैं। जिस धनसे मैं लोगोंकी सेवा कर रहा हूँ, वह भी परमात्माकी चीज है। जिनकी सेवा कर रहा हूँ उन सबके भीतर परमात्मा विराजमान हो रहे हैं, इसलिये वह परमात्माकी ही सेवा है। परमात्मा सबमें निवास कर रहे हैं, सबमें व्यापक हैं और मेरेमें भी व्यापक हैं। मुझमें परमात्मा स्थित हैं और मैं परमात्मामें स्थित हूँ। इसलिये मेरी और परमात्माकी तो एकता ही है। देहके साथ जैसे तादात्म्यभाव है। परमात्मा मेरी आत्मा ही है इस प्रकार परमात्माके स्वरूपमें स्थित होकर और परमात्माका ही बनकर कि मैं परमात्माका ही हूँ, जिस संस्थामें काम करता है या दूकानमें काम करता है वहाँ समझो कि यह परमात्माकी है। जैसे गीताप्रेस परमात्माका है और विचारके द्वारा देखनेसे भी है ही। इसी प्रकार व्यावहारिक दृष्टिसे भी परमात्माकी है और पारमार्थिक दृष्टिसे भी परमात्माकी है। यह भगवान्‌की बड़ी दया है कि अपने हाथमें इतनी बड़ी संस्था है, इस प्रकारका साधन देकर मुझे अपनाया है। अब उसके द्वारा अधिक-से-अधिक सबको सुविधा हो ऐसी चेष्टा करे। हरेक प्रकारसे दूसरोंको आराम पहुँचाये और आराम पहुँचाकर अपने हृदयमें 'मैं आराम पहुँचाता हूँ' यह भाव नहीं आने दे। अहंकारकी गन्ध भी नहीं आने दे। मन-बुद्धि, अहंकार, इन्द्रियाँ और शरीर तो औजार हैं। बुद्धिसे परमात्माके विषयमें हमारा जो निश्चय है उस

स्वरूपको मनसे याद रखे, उसीका नाम है परमात्माके स्वरूपका मनन करना। मनको इस प्रकार काममें रखे कि भगवान्‌की विस्मृति कभी न हो।

जब यह तत्त्व समझमें आ जाता है तो विस्मृति कभी हो ही नहीं सकती, क्योंकि उसे तो सब जगह परमात्मा ही दीखते हैं, कारण कि वह परमात्माकी सेवा करता है। किसी भी प्राणीकी सेवा करता है तो वह परमात्माकी ही सेवा करता है। इसलिये उसका संसारमें इस प्रकार विचरण परमात्मामें ही विचरण है। इस विषयमें गीताका श्लोक (६। ३०) याद करना चाहिये—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

भगवान् कहते हैं—जो पुरुष मुझ परमात्माको सब जगह देखता है, जहाँ उसका मन जाता है वहाँ परमात्माको ही देखता है। जहाँ उसके नेत्रोंकी दृष्टि जाती है वहाँ परमात्माको ही देखता है। उसकी बुद्धिमें हर समय निश्चय है ही कि सब जगह परमात्मा है।

सबको परमात्मामय देखता है कि परमात्मा सबमें है। उदाहरणके लिये आकाशकी-ज्यों परमात्माको और बादलकी-ज्यों संसारको देखे। सब किसीका समूह तो है बादल-स्थानीय और परमात्मा है आकाश-स्थानीय। आकाश अनन्त है और उसके एक हिस्सेमें बादल है और बादलमें भी तो आकाश है। विचार करके देखे आकाश अनन्त है, उस अनन्त आकाशके अंदर बादल है और बादलमें आकाश है। जैसे बादलमें आकाश है और आकाशमें बादल है इसी प्रकार सारे संसारको परमात्मामें देखे और परमात्माको सारे संसारमें देखे। बादलका एक अणु—एक परमाणु भी आकाशसे खाली नहीं है, अणु-अणुमें आकाश

है। एक परमाणु भी ऐसा नहीं है जिसमें आकाश न हो और बादलका सारा-का-सारा समूह आकाशके किसी एक हिस्सेमें है। इसी प्रकार यह सारा ब्रह्माण्ड उस परमात्माके एक हिस्सेमें है। परमात्मा उसमें ऐसे व्यापक हैं जैसे बादलमें आकाश। एक अणुमात्र भी जगह खाली नहीं है जहाँ परमात्मा न हो। इस प्रकार परमात्माको सबमें व्यापक समझकर सबकी सेवा करे। सबकी सेवा परमात्माकी ही सेवा है—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(गीता १८।४६)

जिस परमात्मासे यह संसार व्याप्त है और जो परमात्मा इस संसारमें व्यापक है जिस परमात्मासे यह संसार उत्पन्न हुआ है। ऐसा परमात्माका स्वरूप समझकर अपने कर्मोंके द्वारा, चेष्टाके द्वारा, क्रियाके द्वारा उसकी पूजा करे यानी सेवा करे, सुख पहुँचाये। जैसे बादलोंका समूह आकाशसे उत्पन्न होकर आकाशके किसी एक अंशमें है और आकाश उसमें व्यापक है वैसे ही बादलकी तरह संसार और आकाशकी भाँति परमात्मा है। बादल आकाशसे उत्पन्न होता है और आकाशमें स्थित है तथा बादलोंमें आकाश व्यापक है इस सिद्धान्तके अनुसार बादल तो हुआ व्याप्य और आकाश हुआ व्यापक। इसी प्रकारसे संसार तो है व्याप्य और परमात्मा है व्यापक। आकाशसे बादलोंकी उत्पत्ति हुई, इसलिये बादलोंका समूह तो है आधेय और कार्य तथा आकाश है कारण। इस प्रकार परमात्मा तो हुए कारण और संसार है उसका कार्य। बादल आकाशमें एक देशमें है इसलिये आकाश तो हुआ आधार और बादल है आधेय। इसी प्रकारसे परमात्मा तो है आधार और संसार है आधेय। परमात्मा इस संसारमें व्यापक हैं और इस संसारके परम आधार हैं, इसके

परम कारण हैं—इस तत्त्वको समझ लेना चाहिये। इस तत्त्वको समझनेके लिये अध्याय ९ श्लोक ४ और ५के भावको समझना चाहिये, इनसे यह भाव अच्छी तरह समझमें आ जाता है। उन श्लोकोंको समझकर सबके साथ व्यवहार करे। इस प्रकार समझकर सबके साथ व्यवहार करनेवाला साधक हर समय सबमें परमात्माको ही देखता है। वह परमात्माको किसी प्रकार भूल ही नहीं सकता। इसलिये परमात्माको तत्त्वसे समझकर और मनसे सर्वत्र परमात्माका अनुभव करता हुआ, नेत्रोंसे सर्वत्र परमात्माको देखता हुआ सबको साक्षात् नारायण समझकर सबके साथ बहुत ही उच्च कोटिका व्यवहार करे। मानो साक्षात् भगवान् मूर्ति धारण करके यहाँ आ जायँ तो उनके साथ हमारा कितना उच्च कोटिका व्यवहार हो सकता है। परमात्मा तो आये हुए ही हैं। हमने परमात्माको परमात्मा नहीं समझा यह हमारी गलती है। इस गलतीको ही दूर करना है। परमात्मा तो सब जगह विराजमान हो ही रहे हैं, ऐसा समझकर बड़े उत्साहसे, बड़े चावसे हमें परमात्माकी सेवा करनी चाहिये। इस प्रकार हमारी वह सेवा लीलाके रूपमें परिणत हो जायगी। फिर कोई भी हमसे सेवा कराता है तो हमें यह प्रतीत होता है कि हम भगवान्की सेवा कर रहे हैं। हम अधिक-से-अधिक जितनी सेवा करें प्रत्यक्षमें हमें उतना अधिक-से-अधिक आनन्द आता है और वह सेवा अपने-आप ही दिलचस्पीके साथ होती है, बंल्कि कोई भी बदलेमें सेवा करना चाहे या प्रति-उपकार करना चाहे तो यह भाव होता है कि ये तो साक्षात् भगवान् हैं और इनका कार्य करना, सेवा करना मेरा कर्तव्य है।

लड़का अपनेको माता-पिताका ऋणी समझता है और उनकी सेवा करना अपना कर्तव्य समझता है। किंतु माता-पिता भी उसकी सेवा करने लगें तो आपत्ति पड़नेपर भी वह माता-

पितासे सेवा कराना नहीं चाहता। मान लो उसके पैर दुखते हैं और उसके पिताजी कहते हैं कि मैं थोड़ा तुम्हारा पैर दबा दूँ तो वह कैसे दबवा सकता है। उसके हृदयमें तो पितासे भी बढ़कर भाव है—सबमें परमात्माके स्वरूपका भाव है। वह सोचता है—उनसे मैं सेवा कैसे कराऊँ। वे यदि करनेकी चेष्टा करते हैं तो उसे बड़ा संकोच होता है, लज्जा होती है, दुःख होता है, विचार होता है। ऐसा ही होना चाहिये। इसपर भी यदि पिता स्नेहसे किसी आपत्तिकालमें करना चाहता है और न करानेपर पिताके मनमें दुःख होता है तो पिताके संतोषके लिये लड़का मनमें लज्जा रखते हुए भी पिताकी प्रसन्नताके लिये स्वीकार कर लेता है, वह भी पिताकी सेवा ही है। क्योंकि अपना सिद्धान्त है कि अपने मनसे, तनसे, शरीरसे, सबसे सबकी सेवा करनी और ये मन-तन-धन इनके ही हैं। वह समझता है कि शरीर पिताका ही है। उसकी उत्पत्ति पितासे ही है, पितासे ही पाला गया है, इसका पिता ही मालिक है। यह सारा विश्व परमात्माका स्वरूप है। यह अंशी है और मैं इसका अंश हूँ। यह समष्टि विश्वरूप है, विराट् है, व्यष्टि शरीर उसका ही अंश है। इसी प्रकार स्थूल शरीरके विषयमें और सूक्ष्म शरीरके विषयमें समझकर इन्हें औजार बना करके सबकी सेवा करे। पिताके अंशका कर्तव्य है पिताकी सेवा करना। इसी प्रकार परमात्माके अंशका कर्तव्य है परमात्माकी सेवा करना।

यह शरीर परमात्माके विराट्‌रूपका अंश है। इस शरीरमें आत्मा परमात्माका अंश है। यह व्यष्टि-शरीर समष्टि-शरीरका अंश है, यह समझकर इस व्यष्टि-शरीरके द्वारा समष्टिकी सेवा करे। समष्टि-शरीर परमात्माका शरीर है। समष्टि-आत्मा परमात्माका स्वरूप है। इस रहस्यको समझकर बड़े चावसे, उत्साहके साथ अपने कर्तव्यका पालन करे। कोई

भी अपनेसे सेवा कराये तो अपना अहोभाग्य समझे। समझे कि परमात्माकी मेरे ऊपर कितनी भारी कृपा है जो मेरी सेवाको स्वीकार कर रहे हैं। इसमें खूब आनन्द होना चाहिये, बड़ी प्रसन्नता होनी चाहिये। यदि इस प्रकार अपने जीवनको बिताये तो वह वास्तवमें परमात्मामें ही बरतता है। उसकी सारी चेष्टा परमात्मामें ही हो रही है। दूसरोंके द्वारा जो कुछ चेष्टा हो रही है उसे प्रत्यक्ष लीला प्रतीत हो रही है। मानो भगवान् अनेक रूप धारण करके और मुझे शामिल करके अपने परिकरोंसहित लीला कर रहे हैं।

यह संसार एक लीलास्थली है। इसमें परमात्मा अनेक रूप धारण करके अपनी लीला करनेके लिये आये हैं और मैं भी उनकी लीलामें शामिल हूँ, इसलिये अपने इस शरीरके द्वारा उन सबकी सेवा करे। हृदयमें ऐसा भाव रखे कि वह किसी प्रकारसे भी दूसरेसे अपनी सेवा नहीं करवाये। अपना कर्तव्य समझ ले कि अपने शरीरद्वारा जो कुछ भी अपने अधिकारमें है तन-मन-धनसे दूसरोंकी सेवा करे, किंतु इस बातका खूब खयाल रखे कि करावे नहीं। यही बुद्धिमानी है, यही चतुरता है, यही निष्कामभाव है। कर्मोंमें निष्कामभाव बुद्धिमत्ता है। वह सबसे श्रेष्ठ पुरुष है जिसके हृदयमें किंचिन्मात्र भी प्रति-उपकार लेनेकी इच्छा न हो। भगवान्‌की तो सेवा करनी चाहिये। क्या उनसे सेवा करानी चाहिये? एक सुपात्र लड़का भी अपने माता-पितासे सेवा करानेकी इच्छा नहीं करता है। करनेकी इच्छा रखता है। यह तो जगत्‌के माता-पिता हैं, परम माता-पिता हैं—इनसे बढ़कर कोई हो ही नहीं सकता। हृदयमें ऐसा भाव रखना चाहिये किंतु इसे छिपाकर रखे। बाहरमें इस बातका प्रकाश नहीं करना चाहिये कि मेरा यह भाव है। मैं माता-पिताकी सेवा करता हूँ, आप सब मेरे माता-पिता हैं, इस प्रकारके भावको

प्रकाशित नहीं करना चाहिये, भीतरमें रखे। बाहरमें मुझे लोग जैसा समझें उनके लिये वैसा ही बनकर उनकी सेवा करे, बर्ताव करे, परंतु यह सिद्धान्त समझ लेना चाहिये कि कहीं हम ठगा नहीं जायँ। ठगाना क्या है? किसी दूसरेसे सेवा करवाना ठगाना है और दूसरेकी सेवा करना ही अपने कर्तव्यका पालन करना है। कर्तव्यका पालन करनेसे बहुत शीघ्र ही परमात्माको प्राप्त हो जाता है। अपने अधिकारमें भी जो चीज है उसे भी यह न समझे कि यह मेरी है। बल्कि यह समझे कि यह सब चीज इनकी है, इसे सेवा करनेके लिये मुझे सँभलाया है। इससे मैं ठीकसे सेवा करूँगा तो मुझे और अधिक जिम्मेवारी दे देंगे। अधिक जिम्मेवारी प्राप्त हो जायगी तो और भी ज्यादा आनन्दकी बात है, अतः उनकी चीज उनके लिये अर्पण कर देनी चाहिये। उनके लिये लगा देनी चाहिये। अपनेको तो उनकी सँभाल करनी है। यह समझना चाहिये ये एक प्रकारके औजार हैं और ये इन्हींके हैं, अतः इन्हींके पदार्थोंसे इन्हींकी सेवा हो रही है तथा मेरेमें करनेकी जो शक्ति है इसे भी परमात्माने दिया है, अपनी तो कोई चीज है ही नहीं। फिर यदि कोई मेरा नाम करे तो मुझे लज्जा होनी चाहिये। शरम आनी चाहिये, हृदयमें दुःख होना चाहिये। अपना मान, अपनी बड़ाई सुनकर अपने मनमें जो हर्ष होता है यह हमारा पतन है। यदि लोगोंका रुपया इकट्ठा करके अच्छे काममें लगाऊँ और उससे मेरी बड़ाई हो तथा मैं कहूँ कि रुपया मेरा है और मैंने आपकी सेवा की है, वह तो मेरे लिये चोरी करना है। इसी प्रकार यह समझना चाहिये कि मेरे पास यह जो स्टेट है, चीज है, वह सब भगवान्‌की है। भगवान्‌की चीज भगवान्‌के काममें लगायी जा रही है, ऐसी परिस्थितिमें उसको अपनी चीज मानूँ, अपना धन समझूँ, अपना शरीर समझूँ तथा उससे होनेवाली चेष्टा, सेवाके फलस्वरूप

लोग मेरी बड़ाई करें और उसे मैं मानूँ कि यह मेरी बड़ाई है ऐसा मानकर मैं प्रसन्न होऊँ तो यह मूर्खता है, अपने-आपको धोखा देना है। इसी कारण परमात्माकी प्राप्तिमें हमलोगोंको विलम्ब हो रहा है, हम उस तत्त्वको नहीं समझ रहे हैं। इस तत्त्वको समझकर जो आदमी व्यवहार करता है उसका व्यवहार बड़ा सुन्दर होता है, क्योंकि उसका कोई स्वार्थ तो रहता ही नहीं। उसके शरीरके पालन-पोषणके लिये, उसको कायम रखनेके लिये संसारसे जो चीज ली जाती है उसमेंसे किसी अंशको लेकर काममें लाना चाहिये। वह भी भगवान्की सेवा ही है, क्योंकि शरीर तो भगवान्का है और यह सब सामग्री भगवान्की है जो उसके लिये प्रसाद है, जब यह भाव समझमें आ जाता है तब उसकी सारी चेष्टा अमृतमय हो जाती है। लोग चाहे समझें या न समझें। जो लोग इस बातको समझ जाते हैं वे भी इसी प्रकार मुग्ध हो जाते हैं। अपनेको समझाना नहीं है, अपनी तरफसे समझानेकी कोशिश है, वही मूर्खता है। यह गुप्त भाव है। जो स्त्री उच्च कोटिकी एकनिष्ठ पतिव्रता होती है वह अपने भावको छिपाकर अपने पतिकी सेवा करती है। उसे यदि कोई कह दे कि तू पतिकी सेवा करती है तो उसे लज्जा आती है। इसी प्रकार जो पुरुष अपनेको छिपाकर संसारमें व्यवहार करता है, भगवान् उससे बहुत ही खुश होते हैं। वे समझते हैं कि मेरे तत्त्वको समझनेवाला वास्तवमें यही पुरुष है। हमको तो किसीको समझाना ही नहीं चाहिये कि ये हम इस भावसे करते हैं फिर भी दूसरे यदि समझ जायँ तो अपने मनमें लज्जा और दुःख होना चाहिये। अपना भाव गुप्त रखना चाहिये। जैसे पापी आदमी पापको छिपाकर रखता है उसी प्रकार हमें यह भाव छिपाकर रखना चाहिये। भक्तिसहित निष्काम कर्मका, भाव-उपासना-प्रधान निष्काम कर्मयोगका तत्त्व, रहस्य समझाया गया।

यदि यह समझमें आ जाय तो और कुछ भी समझना नहीं है। इसे समझनेके लिये गीताके पाँच श्लोक इसके प्राण हैं—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥
न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः॥
यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(९।४-५, ६।३०-३१, १८।४६)

भगवान्‌के आयुध-आभूषण आदि धारण करनेका रहस्य तथा अपनेको उनका प्रिय पात्र बनाना

भगवान् सुदर्शन चक्र आदि आयुध क्यों धारण करते हैं? इसका क्या रहस्य है, क्या तत्त्व है? इस विषयको वास्तवमें भगवान् ही जानते हैं पर अपनी बुद्धिके अनुसार अनुमानसे बतलाया जाता है, वह ठीक भी हो सकता है और नहीं भी। भगवान्‌के प्रकट होने—अवतार लेनेके तीन हेतु गीतामें बतलाये गये हैं—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

(४।८)

भगवान् कहते हैं कि 'साधुओंका उद्धार करनेके लिये, दुष्टोंका संहार करनेके लिये और धर्मकी स्थापना करनेके लिये प्रत्येक युगमें मैं प्रकट होता हूँ—अवतार लेता हूँ।'

भगवान्‌के आयुध दुष्टोंका संहार करनेके लिये हैं—दुष्ट शरीरके बाहर भी हैं और भीतर भी। बाहरके जो राक्षस, दैत्य आदि दुष्ट प्रकृतिके हैं, इनको मारनेके लिये भगवान् हर समय आयुध धारण किये रहते हैं। हमारे भजन-ध्यानमें कोई भी बाहरका शत्रु विघ्न नहीं डाल सकता; क्योंकि हमारे प्रभु सब प्रकारसे हमारी रक्षा करते हैं। जब-जब रक्षा करनेकी आवश्यकता पड़ी है, तब-तब भगवान्‌ने रक्षा की है। जैसे—जब दुर्वासा ऋषिने अम्बरीषको मारनेके लिये कृत्या उत्पन्न की, उस समय भगवान्‌के चक्रने स्वयं उनकी रक्षा की। जब कृत्या अम्बरीषको मारनेके लिये दौड़ी तो सुदर्शन चक्रने उसे मार डाला और

दुर्वासाको चेतावनी दी कि तुम अब सावधान हो जाओ! चक्रके भयसे दुर्वासा चारों ओर भागते फिरे, कहीं ठौर नहीं मिली। अन्तमें भगवान्‌के पास गये तो भगवान्‌ने कहा कि 'मैं तो भक्तके अधीन हूँ, तुम उसीके शरण जाओ। तुम्हारे लिये और कोई दूसरा उपाय नहीं है।' दुर्वासा हाथ जोड़े '**त्राहि माम्, त्राहि माम्**, रक्षा करो, रक्षा करो' कहते हुए अम्बरीषके पास आये, अम्बरीष पहलेसे ही हाथ जोड़कर तैयार थे। अम्बरीषने सुदर्शनसे प्रार्थना की कि 'हे देव! इस ब्राह्मणकी आप रक्षा करें।' यह है भक्तोंका भाव।

इसी प्रकार प्रह्लाद भगवान्‌की भक्तिमें डटा रहा। हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको भगवान्‌की भक्ति न करनेके लिये बहुत समझाया, किंतु प्रह्लादने कहा कि यह मेरे वशकी बात नहीं है। मैं भगवान्‌की भक्ति नहीं छोड़ सकता। जब भगवान्‌की भक्ति न छोड़ने तथा अपनी बात न माननेके कारण हिरण्यकशिपुने दण्ड देनेके लिये शण्डामर्कसे कहा कि 'तुम इसे मार डालो', तब हिरण्यकशिपुके आदेशसे शण्डामर्कने कृत्या उत्पन्न की और उसे प्रह्लादपर छोड़ा। उसी समय भगवान्‌का चक्र चला और उसने कृत्याका नाश कर डाला तथा शण्डामर्कको भी मार डाला। प्रह्लादने सोचा कि 'मेरे कारण गुरुपुत्र मारे गये, यह बड़ा पाप हुआ।' अब उनको जीवित करनेके लिये प्रह्लादने भगवान्‌से प्रार्थना की कि 'हे भगवन्! यदि गुरुपुत्रमें मेरा पहले भी द्वेष न रहा हो तथा अब भी न हो तो उसके प्रभावसे ये मेरे मरे हुए गुरुपुत्र जीवित हो जायँ।' फलतः वे जीवित हो गये।

भक्तका भाव ऐसा होना चाहिये जैसा प्रह्लाद और अम्बरीषका था। भगवान्‌के चक्रका यही कर्तव्य है, चक्रने अपने कर्तव्यका पालन किया। जैसे भगवान्‌का चक्र है उसी प्रकार उनकी गदा है, वह भी दुष्टोंका संहार करनेके लिये, अत्याचार करनेवालोंको शिक्षा

देनेके लिये है। ऐसे ही हमारे हृदयमें यदि काम, क्रोध और लोभ आक्रमण करें तो उनका भी विनाश करनेके लिये ये शस्त्र तैयार हैं। ये हृदयके भीतरसे विषयोंका विनाश कर देते हैं।

भगवान्‌के शंखकी कथा इस प्रकार कही गयी है—ध्रुवके कपोलपर जब भगवान्‌ने शंख छुआ दिया तो शंख छुआनेके साथ ही ध्रुवको सारे शास्त्रोंका ज्ञान हो गया और वह भगवान्‌की स्तुति करने लगा। भगवान्‌ने ध्रुवसे वर माँगनेके लिये कहा, इसपर ध्रुवने कहा—'प्रभो! आप वर माँगनेके लिये कहते हैं तो मैं यही वर माँगता हूँ कि मुझे वेद-शास्त्रोंका ज्ञान बिना पढ़े ही हो जाय।' पाँच वर्षके ध्रुवके गालसे भगवान्‌ने शंख छुआ दिया तो ध्रुवको सारे शास्त्रोंका ज्ञान बिना पढ़े ही हो गया।

शंख शत्रुओंके हृदयको कम्पित कर देता है। शंख बजाकर शत्रुओंके हृदयको कम्पित कर देनेका प्रसंग महाभारतमें जगह-जगह आता है। जब कौरवों और पाण्डवोंका युद्ध हो रहा था, तब अर्जुनके रथपर बैठे हुए भगवान्‌ने पांचजन्य शंख बजाया और अर्जुनने देवदत्त नामक शंख बजाया। इससे धृतराष्ट्र-पक्षके योद्धाओंके हृदय विदीर्ण हो गये।

भगवान्‌की यह प्रतिज्ञा थी कि मैं अस्त्र लेकर युद्ध नहीं करूँगा। जब शंख भी आयुधका काम करता है तो संग्राम शुरू होनेके पहले भगवान्‌ने शंख क्यों बजाया? भगवान्‌ने अस्त्र न चलानेकी प्रतिज्ञा की थी, न कि शंख नहीं बजानेकी। भगवान् बिना अस्त्र चलाये ही—अपने शंखसे ही सारा कार्य कर लेते थे। इसी प्रकार हनुमान्‌जी ध्वजाके ऊपर बैठकर गर्जना करते थे। प्रतिपक्षी एकदम घबरा जाते थे। कहीं-कहीं तो ऐसी बात आती है कि हनुमान्‌जीकी गर्जना सुनकर हाथी और घोड़े मल-मूत्र करने लग जाते थे। अर्जुन बाणोंसे, भीम गदासे लड़ाई करते थे और हनुमान्‌जी गर्जना करके, भगवान् शंख बजा करके अर्जुनकी

सहायता करते थे। अस्त्र ग्रहण करके अस्त्र नहीं चलाते थे, सहायक बनकर गये थे, सहायता करते थे, सहायता करनेके लिये तो चुने गये थे, उन्होंने सहायता की, अस्त्र नहीं चलाया।

कमलके लिये भगवान् यह दिग्दर्शन कराते हैं कि सृष्टिके आदिमें मेरी नाभिसे कमल पैदा हुआ, कमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए और ब्रह्माजीसे यह सारा संसार उत्पन्न हुआ। संसारकी उत्पत्ति करनेवाला यह मेरा कमल है। भगवान्के आयुधोंकी बात मैंने अपने भावके अनुसार बतलायी है। कहाँतक ठीक है, कहाँतक ठीक नहीं है, यह तो भगवान् ही जानें। भगवान्का तत्त्व और रहस्य, आयुधोंका तत्त्व और रहस्य भगवान् ही जानते हैं। हमारी बुद्धि वहाँतक पहुँच ही नहीं सकती। यह तो हमारे मनका भाव है, हमारा अनुमान है, हमारी एक धारणा है।

इसी प्रकारकी दूसरी बात यह है कि भगवान्के गलेमें माला, वस्त्र, आभूषण किसलिये हैं? ये भक्तोंका आनन्द बढ़ानेके लिये हैं। इनसे भक्त लोग खुश हो जाते हैं। इसका भी एक रहस्य है, यह भगवान्की प्राप्तिका बड़ा सुगम उपाय है। भगवान्के स्वरूपोंमें किसीका मन लगे तो भगवान् उसे मिल सकते हैं। अपने मनको जो चीज अच्छी लगे, वही भगवान्के अंगपर सजानी चाहिये, जिससे मन फिर प्रभुको छोड़कर अन्यत्र न जाय। हम सबके मनकी आसक्ति माला आदिमें, सुन्दर-सुन्दर वस्त्रोंमें, सुन्दर-सुन्दर आभूषणोंमें स्वाभाविक ही है, इसलिये भगवान्को ऐसा सजाना चाहिये कि जिसे देखकर मन आह्लादित हो जाय, गद्‌गद हो जाय। इस स्थितिमें भगवान्को हम देखते रहें, ध्यान करते रहें और भगवान् हमारा ध्यान करें।

हमारा मन ५६ प्रकारके भोगोंकी ओर जाता है तो भोग लगाना भगवान्की पूजाका एक अंग है। इसलिये जब हम भगवान्की पूजा करें तो जिसे हम बढ़िया-से-बढ़िया चीज

समझें उसे भोग-सामग्रीमें लाकर रखें। अपना मन भगवान्की उस भोग-सामग्रीमें ही लग जाय यानी भगवान्को जो अर्पण किया गया है, उसमें लग जाय तो भगवान्के लिये अर्पित भोग हमारे लिये प्रसाद हो जाता है। भगवान्को निवेदित करके हम उस प्रसादको पायें तो उससे हमारी बुद्धि शुद्ध हो जाय। इसी प्रकार हमारे दिलमें कीमती चीजों—हीरा, पन्ना, माणिक और बढ़िया रत्नोंका आदर है। उसे भगवान्के आभूषणोंमें, मुकुटमें, कुण्डलमें लगायें। रत्नोंसे जड़े हुए दामी वस्त्रसे भी भगवान्को सजायें, दामी पुष्पोंकी माला जिसमें बड़ी भारी सुगन्धि आती हो उससे सजायें। कहावत है कि '**सोनेमें सुगन्ध।**' सुगन्धिवाले सोनेके पुष्प कैसे? जैसे कुबेरके बगीचेमें होते हैं, उनमें सुगन्धि बहुत बढ़िया आती है। एक समय कुबेरके बगीचेसे पुष्प उड़कर गंधमादन पर्वतके ऊपर आ गये थे। वे द्रौपदीको मिले। द्रौपदी भीमसे कहने लगी कि ऐसे पुष्प जहाँ हों वहाँसे लाओ। भीम उनका पता लगाकर कुबेरके बगीचेमें पहुँचे और वहाँसे बहुत-से पुष्प तोड़कर द्रौपदीके लिये ले आये। अपनेको तो मनसे ही मँगाना है। सभी पुष्प वहाँसे ही मँगायें, बल्कि भाव यह रखें कि कुबेर ही अपने बगीचेसे पुष्प लेकर आये हैं, माला लेकर आये हैं। भगवान्की पूजामें कुबेरको भी शामिल करें तो उनका भी कल्याण हो जाय। देवताओंको भी शामिल कर लें। हम ऐसी भावना करें कि देवताओंने पहलेसे ही सब बढ़िया-बढ़िया सामग्री लाकर रखी है और उन पुष्पोंमें जो अलौकिक सुगन्धि है, वह समय पाकर हमको भी आने लगे। भगवान्में, भगवान्की मालामें जो गंध आती है, उस गंधसे हृदयका भाव इतना सात्त्विक हो जाता है कि वह परमात्माकी प्राप्तिके लिये अधिकारी बन जाता है। भगवान्के गलेमें माला पहनाकर जब भगवान्से माला ग्रहण करते हैं तब अपना अहोभाग्य समझना

चाहिये, आनन्दमें खूब मुग्ध होना चाहिये। खूब तृप्त होना चाहिये। इसी प्रकार जितनी सामग्री—ऋतुफल, पूगीफल, ताम्बूल आदि भगवान्‌को निवेदित किये गये हों, वे सब हमारे लिये प्रसाद हो गये, उन्हें ग्रहण करनेसे अपनी बुद्धि शुद्ध होती है।

अपने मनको यदि वैराग्य प्यारा लगे तो उससे भगवान्‌को सजाना चाहिये। शिवजीकी पूजामें शिवजीका ध्यान करना चाहिये। ऐसा ध्यान करना चाहिये कि मानो शिवजी विभूति लगाकर ध्यानावस्थामें मस्त हैं। शरीरमें राख लगा रखी है और बाघम्बर ओढ़ रखा है। यदि भगवान् श्रीरामका ध्यान करना है तो विरक्तवेषधारी वनवासी रामका ध्यान करे। भगवान् श्रीराम १४ वर्षतक वनमें रहे। वनमें जाते समय कैकेयीने मुनियोंके पहनने लायक जो वस्त्र रामको लाकर दिये श्रीरामने बड़ी प्रसन्नतासे वे वल्कल-वस्त्र पहने और श्रीरामके अनुरूप श्रीलक्ष्मणने भी भ्रातृ-भावमें विभोर होकर विरक्तवेषी वनवासीके वल्कल-वस्त्र पहने तथा मृगचर्म ओढ़ा। इसी प्रकार कैकेयीने वल्कल-वस्त्र सीताको भी दिये, इसपर सीता भगवान् श्रीरामसे बोलीं—भगवन्! स्त्रियाँ ऐसे वस्त्रोंको किस प्रकार पहनती हैं, मुझे इसका ज्ञान नहीं है। प्रभो! आप बतलाइये। उस समय भगवान्‌ने लज्जा त्यागकर सभामें वस्त्रोंको हाथमें ले लिया और सीताजीको पहनानेके लिये तैयार हुए। यह देखकर सारी प्रजा, सभी सभासद् रोने लगे। वसिष्ठजी बर्दाश्त नहीं कर सके। उन्होंने कहा—'अरी दुष्टा कैकेयी! क्या दशरथसे तुमने यह भी वरदान माँगा है कि जनकनन्दिनी सीता भी वल्कल-वस्त्र पहन करके वनमें जायँ। यदि ऐसी बात नहीं है तो सीताको वल्कल-वस्त्र देनेका तुम्हें क्या अधिकार है? सीता तो वनमें अपने पतिकी सेवाके लिये जा रही है, अपने पातिव्रत-धर्मकी दृष्टिसे, अपनी इच्छासे जा रही है। तुम्हें लज्जा नहीं आती। सीताने जिन

वस्त्रोंको पहन रखा है, उन्हींको पहनकर वनमें जायगी।' कैकेयी लज्जित हो गयी। सीता राजपोशाक पहनकर भगवान्के साथ वनमें गयी। यदि वैराग्य प्यारा हो तो भगवान्को वही वस्त्र पहनाना चाहिये, उसी प्रकार सजाना चाहिये, जिससे हमारे चित्तमें वैराग्य हो, संसारसे उपरति हो।

अथवा भगवान्का जो स्वरूप अपनेको प्यारा लगे, वैसा ही भगवान्को सजाना चाहिये। भगवान् विष्णु लक्ष्मीके पति हैं, जिनके हृदयमें लक्ष्मीका निवास है। जो लोग लक्ष्मीका आदर करते हैं, धनका आदर करते हैं, ऐश्वर्यका आदर करते हैं, उन पुरुषोंको उचित है कि वे भगवान्को कीमती-कीमती आभूषणोंसे सजायें। अच्छे वस्त्रोंसे सजायें। बढ़िया-बढ़िया चीज भगवान्के गलेमें पहनायें; रत्नोंकी माला, चन्द्रहार, मोतियोंकी माला और सोनेकी माला—ये सब भगवान्के गलेमें सजायें। वैराग्यप्रिय विरक्त भक्तको विरक्त-वेषमें भगवान्को सजाकर उनका ध्यान करना चाहिये।

महर्षि पतंजलि कहते हैं कि '**वीतरागविषयं वा चित्तम्**' (समाधिपाद ३७) परमात्म-विषयक धारणासे चित्त वशमें हो जाता है। अतः मनको स्थिर करनेके लिये, मनको अपने वशमें करनेके लिये, मनको एक देशमें बाँधनेके लिये परमात्म-विषयक धारणा करनी चाहिये। चित्तको एक देशमें बाँधनेका नाम धारणा है। विषयोंका चिन्तन जिसके चित्तसे हट गया है, वह वीतराग है। यह अर्थ ब्रह्म-पुरुषका है, इसको अपने चित्तका विषय बनाना वैराग्यवान् पुरुषोंका ध्यान करना है। वैराग्यवान् पुरुष संसारमें बहुत हुए हैं—जैसे—शुकदेव, सनकादि, ऋषभदेव तथा जड़भरतजी आदि विरक्त संसारसे उपरत हुए, किंतु भगवान् शंकर और श्रीरामचन्द्रजी तो योगियोंके योगी और विरक्तोंके भी विरक्त हैं। यदि आप विष्णुके उपासक हैं तो आपको रामका ध्यान करना चाहिये। श्रीविष्णु ही रामके रूपमें त्रेतामें प्रकट हुए।

देवताओंके आराधना करनेपर भगवान्ने कहा कि मैं दशरथके यहाँ चार रूपसे अवतार लूँगा—राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न। इन रूपोंमें भगवान् प्रकट हुए। इनमें प्रधान तो साक्षात् भगवान् राम ही थे और सभी उनके अंश थे। इसलिये भगवान् विष्णु ही राम हैं, उनसे अलग नहीं हैं। किंतु जिस समय भगवान् राम चौदह वर्ष वनमें रहे, उस समय विरक्त होकर विचरे। यद्यपि जगज्जननी श्रीसीताजी सेवाके लिये साथमें रहीं, फिर भी भगवान् ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक रहे। इसी प्रकार लक्ष्मण ब्रह्मचर्यका पालन करते रहे। इतनी ही बात नहीं, भरत और शत्रुघ्न भी राज्यका शासन करते हुए ब्रह्मचर्यका पालन करते रहे; क्योंकि वे समझते थे कि जिस प्रकार श्रीराम और लक्ष्मण वनमें रहकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, उसी प्रकार हमें भी रहना चाहिये। वाल्मीकिरामायणमें बतलाया गया है कि भरत और शत्रुघ्न ही नहीं, अपितु जितने मन्त्री थे, सबने उसी प्रकार वल्कल-वस्त्र पहनकर १४ वर्ष अपना जीवन बिताया। पद्मपुराणमें यह बात आती है कि हनुमान्जी अयोध्यामें जाकर देखते हैं कि श्रीभरतजी महाराज पादुकाओंकी सेवा कर रहे हैं। पादुकाको पुराण सुना रहे हैं, साथमें सारे मन्त्री और शत्रुघ्न भी हैं। हनुमान्जीने संदेश दिया कि भगवान् राम विमानमें बैठकर आ रहे हैं। हनुमान्जी देखते हैं कि मन्त्रियोंसहित भरत और शत्रुघ्नका जीवन कैसा है। वे वल्कल-वस्त्र पहने हैं। मुनिलोग जो कंद-मूल फल खाते हैं, वही उनका भोजन है। भूमिपर शयन करते हैं तथा ब्रह्मचर्यव्रतसे रहते हैं। क्योंकि जब भगवान् राम और लक्ष्मण वनमें चौदह वर्ष ब्रह्मचर्यव्रतसे निवास करते हैं तो हमलोग विषय-भोगोंको कैसे भोगें। भगवान् राम जब जमीनमें शयन करते हैं तो हम ऊपर कैसे लेटें। वे सोचते हैं कि हमें तो जमीनमें गड्ढा खोदकर उसमें शयन करना चाहिये। ये आदर्श भाव हैं। तुलसीकृत

रामायणमें यह बात बतायी गयी है कि भगवान् रामके विरक्तरूपका ध्यान करना चाहिये। शिवके उपासकको ध्यानावस्थामें बैठे भगवान् सदाशिवका ध्यान करना चाहिये। हमको भगवान् शिवकी नकल करनी है। क्योंकि भगवान् शिव अपने इष्टका ध्यान करते हैं। इसलिये यदि हमारे इष्ट शिव हैं तो हम शिवका ध्यान करें। ऐसा करनेसे वहाँ मन रुक जाता है। अतः मनको रोकनेके लिये अपने मनमें भगवान्‌के स्वरूपको सजाकर भगवान्‌का ध्यान करना चाहिये। अपनेको ऐसा बनाना चाहिये जिससे भगवान् हमारे ऊपर आसक्त हों। भगवान् जैसा चाहते हैं तथा भगवान्‌को जो बातें प्यारी लगती हैं वैसा हमको बनना चाहिये। इससे भगवान् प्रसन्न होते हैं। भगवान्‌को अपना भक्त प्रिय है। किन लक्षणोंवाला भक्त प्रिय है? ये लक्षण गीताके १२ वें अध्यायके १३ वें श्लोकसे १९ वें श्लोकतक कहे गये है, उन्हें अपनेमें धारण करना चाहिये, यदि भगवान्‌को बुलाना है और अपनेमें भगवान्‌को आसक्त करना है तो भगवान्‌को प्रेमास्पद और अपनेको प्रेमी बनाना चाहिये। ऐसी दशामें भगवान्‌के लिये हम प्रेमास्पद हो जायँगे और भगवान् हमारे प्रेमी हो जायँगे। भगवान्‌के लिये ऐसा कर देना चाहिये कि वे हमारे ऊपर आसक्त हो जायँ। यहाँ आसक्तका मतलब यह है कि 'हम भगवान्‌के लिये अति प्यारे हो जायँ।' 'प्यारा' दो प्रकारका होता है—एक प्रिय होता है तथा एक अतिप्रिय होता है। भगवान्‌ने गीताके १२ वें अध्यायके १३ वें श्लोकसे लेकर १९ वें श्लोकतक जो लक्षण बतलाये हैं उनको जो धारण करता है, वह भगवान्‌को अतिशय प्यारा होता है—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

जो सारे भूतोंमें द्वेषभावसे रहित है और सबमें हेतुरहित प्रेम करनेवाला, सबपर दया करनेवाला है। जिसकी किसीके प्रति ममता नहीं है, दिलमें न अभिमान है न अहंकार, किसीसे किसी प्रकारका बदला नहीं चाहता चाहे कोई कितना ही अपराध क्यों न कर दे, सुख और दुःखकी प्राप्तिमें जो सम है और हर समय आनन्दमें मगन है, संतुष्ट है, कुछ भी प्राप्त होनेमें जिसे संतोष है, जिसकी बुद्धि स्थिर है और मन वशमें है, जिसने भगवान्‌में मन और बुद्धिको लगा दिया है। भगवान् कहते हैं कि ऐसा मेरा भक्त मुझको प्यारा है। दो श्लोक मैंने आपको बतलाये, बाकी श्लोक आप गीताप्रेससे प्रकाशित गीता-तत्त्वविवेचनीमें देख सकते हैं, इनके अनुसार साधन करनेवाला मुझे अत्यन्त प्रिय है।

अपनेसे किसी प्रकारकी छोटी अवस्थावालोंके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये उसे बतलाया जाता है। आज्ञा देनेवालेको आज्ञा देनेके समय यदि अपने स्वार्थकी बात हो तो नहीं कहनी चाहिये। यदि कह दी गयी हो और वह काममें नहीं लाये तो मनमें दुःख नहीं करना चाहिये। बात ऐसी कहनी चाहिये, जिससे संसारका हित हो या जिसके प्रति आज्ञा दी जाती हो उसका हित हो। यदि यह मालूम हो जाय कि यह बात काममें नहीं ला सकेगा, कठिनाई पड़ती है तो उसे संकोचमें नहीं डालना चाहिये, यानी नहीं कहनी चाहिये। मालिक होकर भी अपनेमें मालिकपनेका अभिमान लाकर वह बात नहीं कहनी चाहिये। प्रेमसे समझाकर ही कहनी चाहिये। संसारका जिसमें हित हो इस बातपर विशेष ध्यान रखना चाहिये। यदि कोई संस्था है तो संस्थाका हित हो और यदि कोई व्यक्ति हो तो व्यक्तिका हित हो, ऐसी बात कहनी चाहिये। अपने स्वार्थ और सेवाकी बात न्याययुक्त, धर्मयुक्त हो तो अपनी स्त्री, अपने पुत्र अथवा नौकरोंको कह सकता है।

भगवान्‌के प्रभावकी कोई सीमा नहीं है। वह अपरिमित है, वाणीकी सामर्थ्य नहीं है कि उसका वर्णन कर सके। संसारमें जो कुछ भी शक्ति, प्रभाव, महिमा देखनेमें आती है, वह सब मिलकर सागरमें बूँदके समान भगवान्‌के प्रभावका एक अंश है। सारा-का-सारा ब्रह्माण्ड परमात्मामें सागरके एक बुदबुदेके समान है। उसी प्रकार सारे-के-सारे ब्रह्माण्डमें जो भी शक्ति, प्रभाव, सामर्थ्य प्रतीत होता है, वह सब परमात्माके एक अंशका ही प्रादुर्भाव है। संसारमें कोई भी ऐसी बात नहीं है जो परमात्मा नहीं कर सकते। भगवान्‌के लिये कोई भी बात असम्भव नहीं है। संसारके प्राणी जो पात्र नहीं हैं, अपात्र हैं, कुपात्र हैं, उन सबका भगवान् चाहें तो क्षणमात्रमें उद्धार कर सकते हैं। भगवान्‌के लिये उद्धार करनेमें नीति-न्यायका विचार नहीं है। भगवान् कोई भी काम करें, उनके लिये कुछ भी अनुचित नहीं है। वह सब कुछ कर सकते हैं, वे सर्वसामर्थ्यवान् हैं। उनके सामर्थ्यके विषयमें कुछ भी कैसे बतलाया जा सकता है। भगवान्‌के रहस्यकी बात भगवान् ही जानते हैं। दूसरा कोई बतला ही नहीं सकता। हम तो एक महात्मा पुरुषके रहस्यको भी नहीं बतला सकते। क्योंकि अपने हृदयके भावको, स्वरूपके तत्त्व-रहस्यको महात्मा ही जानते हैं। वह स्वसंवेद्य है, वह आप ही जानते हैं। वह पर-संवेद्य नहीं हैं—दूसरे नहीं जान सकते। जब एक महात्माके तत्त्व-रहस्यको दूसरा महात्मा नहीं समझ सकता तो साधारण पुरुष समझेगा ही क्या? परमात्माके रहस्यको परमात्मा भी किसी अंशमें ही बतला सकते हैं, क्योंकि वह वाणीका विषय नहीं। भगवान् भी बतलायेंगे तो वाणीसे ही बतलायेंगे। आप भी अपने हृदयका भाव दूसरोंको बतलाना चाहें तो पूरा-पूरा नहीं समझा सकते। यदि कहें कि हम तो असमर्थ हैं पर भगवान् तो सर्वसमर्थ, सामर्थ्यवान् हैं, उनके लिये तो कुछ

भी असम्भव नहीं है, सो तो ठीक है पर भगवान्‌के लिये ऐसी बात होनेपर भी वर्णन तो वाणीसे ही किया जायगा। भगवान् कहते भी हैं—यह रहस्यकी बात है, यह गोपनीय बात है, गुह्यतर है, गुह्यतम है, सर्वगुह्यतम है—इस प्रकार भगवान् रहस्यकी बात कहते भी हैं। रहस्य भाव है और वाणी क्रिया है। रहस्य समझनेकी चीज है, वह वाणीमें नहीं आ सकता। उसका कुछ दिग्दर्शन कराया जा सकता है। प्रेम और श्रद्धा—ये भी भाव हैं। इसी प्रकार तत्त्व और रहस्य—ये सब भी भाव हैं। ये सब भाव शुद्ध और तीक्ष्ण बुद्धिसे समझे जाते हैं। श्रद्धाकी, प्रेमकी, निष्काम-भावकी, तत्त्व और रहस्यकी, भगवान्‌के गुणोंकी, महात्माओंके गुणों, तत्त्व-रहस्यकी, भगवान्‌के लीला-तत्त्व-रहस्यकी—ये सभी बातें शास्त्रोंमें लिखी हैं और शास्त्रोंमें उनका बड़ा विस्तार है। इसलिये सभी बातें कहनेमें आयेंगी नहीं; क्योंकि वाणीमें समा नहीं सकतीं। किंतु जितनी बात बतलायी जाती है और हमलोग समझते हैं, उसका शतांश भी हम काममें लायें तो हमारा कल्याण हो सकता है। गंगाका प्रवाह रात-दिन बहता है, सारे संसारके लोग उसका पान करने लगें तो सबकी पिपासा बुझ सकती है और गंगा वैसी-की-वैसी ही बहती रहती है, उसमें कोई कमी नहीं आती। गंगा भी परिमित है, उसमें भी कमी आ सकती है, किंतु भगवान्‌के गुण, तत्त्व-रहस्यकी सीमा नहीं है। भगवान् जब प्रकट होते हैं, अवतार लेते हैं तो उनके दर्शनसे, भाषणसे, स्पर्शसे, वार्तालापसे मनुष्यका कल्याण हो जाता है, इसमें कोई बड़ी बात नहीं। भगवान्‌के स्वरूप और नाम-लीला आदिकी स्मृतिसे भी मनुष्यका कल्याण हो सकता है, भगवान्‌के नामके उच्चारणसे भी मनुष्यका कल्याण हो सकता है, तब उनके दर्शन-भाषण-स्पर्श-वार्तालापसे कल्याण हो जाय उसमें तो बात ही क्या है! इन

सबके प्रभावसे मनुष्य अपना ही नहीं, दूसरोंका भी कल्याण कर सकता है। सारे संसारका कल्याण कर सकता है। ऐसी उनमें योग्यता आ जाती है।

सबसे गोपनीय बात तो भगवान्ने गीतामें बतलायी है, अपने-आपका परिचय दिया है और भी बहुत-सी गोपनीय बातें हैं, पर सबसे बढ़कर बात है अपने-आपका दिग्दर्शन कराना। स्वयं प्रकट होकर यह बतला देना और कह देना कि—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

(गीता १८।६५)

तू मेरेमें मनको लगा दे, मेरा ही भक्त बन जा, मुझसे प्रेम कर, मेरी आज्ञाका पालन कर, मेरी ही पूजा कर, मुझे ही नमस्कार कर—ऐसा करनेसे तेरा निश्चय ही कल्याण हो जायगा, क्योंकि तू मेरा भक्त है, अतिशय प्यारा है। इसलिये तेरे हितके लिये यह बात कही है। तुम्हारे प्रति सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि तू निश्चय ही मुझे प्राप्त हो जायगा, इसमें कुछ भी संशयकी बात नहीं है। इसमें यह भाव भरा हुआ है। यह सबसे बढ़कर बात है, भगवान् फिर कहते हैं—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८।६६)

सारे धर्मोंको मुझ परमात्मामें समर्पण कर दे और मेरी शरण आ जा! फिर मैं तुम्हारे पहलेके किये पापोंसे, वर्तमानके पापोंसे एकदम मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर। किसी बातकी चिन्ता मत कर, निश्चिन्त हो जा। उपर्युक्त दो श्लोक बहुत ही रहस्यके हैं।

भगवान्‌के प्रेमका विषय

श्रीभगवान्‌का सिद्धान्त और भगवान्‌की बात वास्तवमें असली और कल्याण करनेवाली बात है। मनुष्यकी स्वतन्त्र बातका कोई मूल्य नहीं है। भगवान्‌के सम्मुख हृदय खोलकर अपने हृदयकी बात भगवान्‌के सामने रखे और फिर उसमें जो फुरणा हो उसे यह समझे कि यह भगवान्‌की ही बात है या भगवान्‌की ही प्रेरणा है तो वह बात मनुष्यके लिये बहुत ज्यादा महत्त्वपूर्ण होती है।

हमलोगोंको समय-समयपर एकान्तमें बैठकर भगवान्‌की शरण होकर अपने हृदयको भगवान्‌के सामने रखना चाहिये। मेरा क्या कर्तव्य है यह बात भगवान्‌से पूछें और उसमें जो फुरणा हो वह अपने लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण है ऐसा समझें। एकान्तमें बैठकर ऐसा मानें कि 'भगवान् हमारे सम्मुख बैठे हैं'—ऐसा मनसे निश्चय करके भगवान्‌से यदि बातचीत की जाय तो अपने हृदयमें अच्छे-अच्छे भाव पैदा होते हैं। इस बातका अभ्यास करनेके लिये गीताप्रेससे 'ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप' नामकी पुस्तक छपी है। पुस्तकके आधारपर उसके अनुसार भी मनुष्य अभ्यास कर सकता है। उसी प्रकार करे यह हमारा ध्येय नहीं है, बल्कि मतलब यह है कि उस प्रकारके ध्यानसे वह कुछ थोड़ी युक्ति समझ ले और उसी युक्तिसे एकान्तमें बैठकर रोज भगवान्‌से बात करे तो बहुत अच्छी सलाह मिले। उसमें अपनी उत्तरोत्तर उन्नति देखता रहे। जल्दी-से-जल्दी परमात्माकी प्राप्ति कैसे हो? यह प्रश्न भगवान्‌के सम्मुख रखे। उसके बदलेमें भगवान्‌से जो उत्तर मिले उसे साधनके रूपमें लावे।

एक बात तो यह है कि जल्दी-से-जल्दी भगवान् कैसे मिलें? ऐसी जिज्ञासा तीव्र होनी चाहिये। इसकी हर समय

जागृति रहनी चाहिये। दूसरी बात यह है कि 'भगवान्‌के सिवाय वास्तवमें अपना हितैषी कोई है ही नहीं।' ऐसा समझकर भगवान्‌को कभी भूले नहीं। अपने इष्टदेव जैसे श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीविष्णु या श्रीशंकर जो कोई हों, उनके स्वरूपको मनसे हर समय अनुभव करता रहे, उनके रूप, लावण्य और गुणोंको देखता रहे। यह खयाल करना चाहिये कि भगवान्‌के रूप और लावण्यके समान दुनियामें कुछ भी नहीं है, किसीका भी रूप नहीं है। सारी दुनियाका सौन्दर्य भगवान्‌के सौन्दर्यके मुकाबलेमें एक अंशके बराबर भी नहीं है। जैसे सारी दुनियाका सौन्दर्य मिलकर एक तरफ हो और भगवान्‌का सौन्दर्य एक तरफ हो तो भगवान्‌का सौन्दर्य समुद्रके समान है और संसारका सौन्दर्य एक बूँदके समान भी नहीं है; क्योंकि दुनियाका जो कुछ भी सौन्दर्य है वह भगवान्‌से ही है। भगवान्‌की सुन्दरताका, अलौकिकताका वर्णन न वाणीसे हो सकता है, न मनके द्वारा, न संकल्पसे। उदाहरण देकर भी नहीं बताया जा सकता; क्योंकि भगवान्‌का स्वरूप दिव्य है, अलौकिक है, चिन्मय है। उसे देखनेसे मन और नेत्र इतने आकृष्ट हो जाते हैं कि उसकी सामर्थ्य नहीं कि वह अपने नेत्रोंको वहाँसे हटा सके या मनको वहाँसे हटा सके। उनकी चमक-दमक सब अलौकिक है, चेतन है। उनकी चमक भी चिन्मय है, उस चमकके बराबर कोई चीज भी नहीं है, कोई समझाये भी कैसे? उनमें प्रत्येक गुण अपार हैं। ऐसे गुणोंके सागर भगवान्‌से जो मिलना चाहे उसे मिलते हैं। यह विश्वास होनेके बाद मनुष्य उनसे बिना मिले रह नहीं सकता। भगवान्‌के मिलनेमें विलम्ब होनेका कारण अपनी ही कोई कमी है। उसकी खोज करनी चाहिये।

भगवान् अनन्य प्रेमसे मिलते हैं और वह अनन्य प्रेम भगवान्‌में श्रद्धा और विश्वास होनेसे होता है। भगवान्‌में श्रद्धा और विश्वास भगवान्‌का स्वभाव जाननेसे, प्रभाव जाननेसे, गुण

जाननेसे होता है। अपना उनसे स्वाभाविक ही सम्बन्ध है, इस बातको जाननेसे, भगवान्में विशुद्ध प्रेम—अनन्य प्रेम हो सकता है। जब इस प्रकारसे भगवान्की तरफ मन लग जाता है तब एक भगवान्के सिवा कोई बात अच्छी नहीं लगती। वह भगवान्के प्रेममें पागल-सा हो जाता है, मुग्ध हो जाता है, कभी रोता है, कभी हँसता है। जब मानसिक संयोग होता है तब तो हँसता है और जब वियोग हो जाता है तब रोता है। भगवान्का स्वभाव बहुत ही कोमल और बहुत ही दयापूर्ण है। प्रेमकी तो भगवान् मूर्ति ही हैं। वे इतने क्षमाशील हैं कि अपराधकी तरफ कभी देखते ही नहीं। चिन्मय होनेसे हम उन्हें ज्ञानस्वरूप और बोधस्वरूप भी कह सकते हैं। भगवान्के ऐसे स्वरूपको, उनके चरित्रोंको, लीलाओंको देख-देखकर खुश होता रहे। ऐसा हर वक्त माने कि भगवान् अपनी आँखोंके सामने लीला कर रहे हैं। आँखोंके सामनेका मतलब है कि मनरूपी नेत्रोंके सामने ऐसा देखता रहे। मनरूपी नेत्रोंके सामने देखते-देखते बहुत ज्यादा प्रेम बढ़ जानेसे भगवान् प्रकट होकर प्रत्यक्षमें दीखने लगते हैं।

भगवान् प्रेमका कितना आदर करते हैं, इस बातका जब मनुष्यको अनुभव हो जाता है तब भगवान्के लिये वह पागल-सा हो जाता है। यदि पागल-सा नहीं हो जाता है तो समझना चाहिये कि उसने भगवान्के प्रेमका तत्त्व नहीं समझा है, भगवान्के स्वभावको नहीं समझा है, भगवान्के प्रेमका रहस्य नहीं समझा है; क्योंकि जिसमें भगवान्का प्रेम हो जाता है उसकी ऐसी दशा हो ही जाती है। भगवान् और उनके प्रेमका विषय पढ़नेसे भी उसपर अच्छा असर पड़ता है। उसमें दिग्दर्शन देखता रहता है। अपना प्रेम चाहे नहीं हो किंतु दूसरोंका भगवान्के साथ अलौकिक प्रेमका दृश्य देखता है, तभी पागल-सा हो जाता है।

सुदामाके साथ भगवान्के प्रेमका विषय आता है, भागवतमें भी आता है और उसके ऊपर टीका करनेवालोंने भी, कवियोंने

भी इस विषयमें लिखा है और ग्रन्थमें भी। विष्णुपुराण आदिमें भी इसका प्रकरण आता है। कवियोंने इसे विशेष सजाकर कहा है, किंतु वास्तवमें अपनेको तो मतलबकी बात लेनी है, किसी ग्रन्थको देखकर ज्यूँ-का-त्यूँ नहीं। भगवान्‌के भक्तोंकी बात सुनकर और शास्त्रोंको देखकर उनके प्रेमकी बात संक्षेपसे कही जाती है—

'एक समय सुदामाकी स्त्रीने अपनी गरीबीकी बात सुदामाके सम्मुख रखी और बोली कि 'अपने मित्र श्रीकृष्णजीसे आपको मिलना चाहिये।' सुदामाने कहा—'क्या मैं अपनी दरिद्रताके निवारणके लिये अपने प्रेमी भगवान्‌से मिलूँ।' वह बोली—'उनसे कोई सवाल करनेकी आवश्यकता ही नहीं है। अपने प्यारे मित्रसे तो मिलना ही चाहिये।'

सुदामाकी स्त्रीका ध्येय तो यही था कि इनके मित्रसे मिलनेपर अपनी दरिद्रता दूर हो जायगी पर सुदामाका भाव बड़ा पवित्र था। वे बड़े प्रेमी थे। उनका प्रेम निष्काम ही था। स्त्रीके विशेष कहनेपर उन्होंने स्वीकार किया कि बहुत दिन हो गये और स्त्री कहती है तो चलो एक बार मिल लें। फिर उन्होंने अपने मनमें सोचा कि मित्रोंके पास जाया जाय तो साथमें कुछ तो लेकर जाया जाय। इसे सुनकर उनकी स्त्रीने थोड़े-से टूटे चावलके चिउड़े पड़ोसीसे लाकर उनको दिये और बोली कि इसे आप ले जायँ। अब सुदामाजी उसे भेंटके लिये कैसे ले जायँ। उसे बाँधनेके लिये कोई कपड़ा चाहिये। उनके यहाँ दरिद्रताकी हद थी, कपड़ा कहाँ? फिर भी किसी फटे-पुराने कपड़ेमें चाहे धोती रही हो, चाहे दुपट्टा या कुछ भी फटा-पुराना रहा हो, उसमें कई परत करके बाँध दिया और उस कपड़ेको लपेट कर दे दिया तथा बोली कि ले जाइये। उन्होंने उसे गठरी-सी बनाकर काँखमें दबा लिया और चल पड़े भगवान्‌से मिलने। रास्तेमें रात हो गयी, वहाँ सो गये। बतलाया जाता है कि वहाँ

भगवान्‌ने उनकी मदद की, जिससे वे द्वारकाके नजदीक पहुँच गये। प्रातःकाल उठते ही उन्होंने द्वारकाका रास्ता पकड़ा और द्वारका तुरंत ही आ गयी। यह देख उन्हें आश्चर्य हुआ। लोगोंसे उन्होंने पूछा—'क्या यही द्वारका है?' लोगोंने कहा—'यही द्वारका है।' फिर कहा कि 'यहाँ हमारा एक मित्र कृष्ण रहता है, उसका मकान कहाँपर है?' किसीने कहा 'कौन कृष्ण? वह भगवान् कृष्ण जो राजराजेश्वर हैं, उसे पूछते हो क्या?' सुदामाने सोचा कि 'मेरा मित्र सबके लिये राजराजेश्वर है, पर हमारा तो मित्र ही है।' हाँ उसीको पूछता हूँ।

उसने कहा—वह सामने जो महल दीख रहा है, वह भगवान्‌का महल है। सुदामा वहाँ गये। वहाँ द्वारपाल खड़ा था। सुदामाने उससे पूछा कि 'क्या मेरे मित्र भगवान् कृष्णका यह मकान है?' उसने विचारा कि यह भगवान्‌को इस प्रकार कैसे बोल रहा है कि कृष्ण हमारा मित्र है। फिर सोचा कि भगवान्‌के ऐसे भी मित्र हो सकते हैं। भगवान्‌के लिये कौन-सी बड़ी बात है। द्वारपाल बोला—'हाँ भगवान् राजराजेश्वर कृष्णजीका महल यही है।' तब सुदामा बोले—'भैया, तुम जाकर कृष्णके पास हमारी सूचना दे दो कि 'तुम्हारा मित्र सुदामा तुमसे मिलने आया है।' बस इतनी ही खबर तुम उनके पास भेज दो।' द्वारपालने अपने मनमें सोचा—भाई ठीक है, निवेदन करना तो अपना काम है। वह गया और जाकर महलमें खड़ा हो गया। सभ्यताके साथ हाथ जोड़कर कथा कहनी शुरू की कि 'महाराज! एक ब्राह्मण है, दुबला-पतला है और अवस्थामें भी कुछ बूढ़ा-सा लगता है, फटी हुई धोती पहने है तथा शरीरपर मैल जमा हुआ है, जातिका अपनेको ब्राह्मण बताता है और हुजूरको कहता है कि 'कृष्ण हमारे मित्र हैं अपना नाम सुदामा बतलाता है।' इतना सुननेके साथ भगवान् एकदम विह्वल हो गये, प्रेममें अधीर हो गये। वहाँसे दौड़े और अपनी रानीसे बोले कि 'झारी लेकर आओ

हमारा मित्र आया है, उनका चरण धोयेंगे।' वे बड़े ही उतावले हो गये। रानियोंने सोचा कि 'भगवान्‌का कौन बड़ा मित्र आ गया? कौन बड़ा भक्त आ गया। चलो, हम सब भी दर्शन करें।' सभी स्त्रियाँ कोई सोनेकी, कोई चाँदीकी झारी लेकर दौड़ पड़ीं। भगवान् तुरंत पहुँच गये दरवाजेपर। यह देखकर चौकीदारके भी होश गुम हो गये। सोचा, यह क्या लीला है! तदनन्तर भगवान् बड़े भावसे जाकर उनसे मिले और दोनों श्रीकृष्ण तथा सुदामा आपसमें एक-दूसरेके गलेमें बाँह डालकर रोने लगे—प्रेमसे रोने लगे—इतना रोये कि प्रेमकी आँसुओंकी धारा बहने लगी। भगवान् खूब ही करुणाभावसे, प्रेमभावसे रोने लगे।

दोनों आपसमें इस प्रकार प्रेमसे रोते रहे कि आँसुओंकी धारासे सुदामा भींग गये। लोगोंने देखा कि क्या बात है। यह क्यों आ गया? बतलाया जाता है कि अक्रूरजी तथा उद्धवजी काफी समय बाद उनको अलग-अलग कर पाये, घंटों लग गया अलग करनेमें। कुछ देर देखते रहे कि अभी छोड़ देंगे, अभी छोड़ देंगे। किसी प्रकार दोनोंको दोनोंने अलग किया। अलग करनेके बाद भी भगवान् एकदम प्रेमसे मुग्ध हो गये और अपना हाथ उनके कंधेपर रखकर गलबंधी डालकर उन्हें अपने महलमें लाने लगे और लोग यह अलौकिक दृश्य देखने लगे। बोले—'भैया! बहुत दिनपर तुम मिले। क्या मुझे भूल ही गये? कभी याद ही नहीं किया, कभी इधर आये ही नहीं। अच्छा भैया! हम दोनों जब एक साथ गुरु सांदीपनिके यहाँ पढ़ते थे, वह सब बात तो तुम्हें याद ही होगी, क्या याद है जब हम दोनों एक दिन जंगलमें गये थे। सूखी लकड़ियाँ इकट्ठी की थीं। आँधी आ गयी थी, पानी भी आ गया था। हमलोग वृक्षोंपर चढ़े थे, उस समय तुम्हारे दाँत बजते थे तो मैंने तुमसे पूछा था कि 'भैया! क्या खाते हो?' तुम उस समय भी भूखे थे। मेरेसे छिपाव किया कि नहीं, सर्दीसे दाँत कटकटाते हैं। खाता

कुछ भी नहीं। फिर भी मुझसे छिपाकर चने चबाते रहे, वह सब तो याद होगा।' इस प्रकारसे पुरानी बातें करते, बीते जमानेकी बातें करते चले महलमें।

जब सुदामा महलमें पहुँचे तब वहाँ सारा-का-सारा आश्चर्य-सा, अचम्भा-सा हुआ देखकर सोचा कि यह क्या है? कैसा महल है, यह महल तो मणियोंसे जटित है, इसमें मणियोंके खम्भे हैं। देखकर वे आश्चर्यमें पड़ गये। जब आश्वस्त हुए तब भगवान्ने पूछा—'भाई! भौजाईजीने सौगातके लिये क्या भेजा?' यह सुनकर सुदामा बहुत लज्जित हुए। बहुत संकोच करने लगे। सोचने लगे मैं क्या उत्तर दूँ। मणियों एवं रत्नोंसे जड़े हुए इस सोनेके महलमें अपने इन चावलोंके कणोंको इनके सामने मैं कैसे पेश करूँ? तब लज्जित होकर पोटली दबाये रखे, धीरे-धीरे छिपाने लगे। यह देखकर भगवान्ने कहा—'सुदामा! तुम हमसे क्यों छिपाते हो? हमारी भौजाईने जो भेजा है उसे तो भैया! आपको मुझे देना ही चाहिये।' ऐसा कहकर भगवान्ने अपना हाथ बढ़ाया और गठरीतक हाथ पहुँच गया। गठरीको खींचा। पोटली फट गयी और सब चिउड़ा गिर गया। चारों तरफ बिखर गया। अब भगवान्ने अपना हाथ ऐसे बढ़ाया कि जैसे कोई मँगते-भूखे आदमीको अन्न हाथ लग जाता है। इसके बाद भगवान् अपना हाथ उसी तरह बढ़ाकर मुट्ठी बंद करके उसे खाने लगे जिस प्रकारसे मँगता-भूखा आदमी खाता है और प्रशंसा करने लगे कि भैया! यह तो बड़ा ही मीठा है, इतना मीठा कि इसका क्या वर्णन करूँ। ऐसी स्वादिष्ट चीज लाकर तुम छिपाते क्यों थे।

एक मुट्ठी खानेके बाद फिर दूसरी मुट्ठी ज्यों ही बढ़ायी त्यों ही रुक्मिणीजीने कहा—'महाराज! क्या आप अकेले ही सब खा जायँगे, भक्तोंकी प्रसादी हमलोगोंको भी तो मिलनी चाहिये।' तबतक दूसरी मुट्ठी भगवान् खा गये और शेषकी तरफ जब हाथ

बढ़ाया, तब रुक्मिणीजीने भगवान्‌का हाथ पकड़ लिया और मुट्ठीमें जो चिउड़े थे वह उनसे छीन लिये। फिर भगवान् सुदामाकी प्रशंसा करने लगे। कहने लगे कि 'भैया! बहुत समयके बाद तुम मिले' इतना कहकर उनके चरण धोने लगे। भगवान्‌ने सुदामाके चरणोंको धोकर उनका जल अपने महलमें छिड़का और कहा कि आपके चरणोंके जलसे हमारा महल आज पवित्र हो गया, शुद्ध हो गया। ऐसा बार-बार कहने लगे। फिर उन्हें पलँगपर बैठाकर आप स्वयं भी और रानियाँ भी उनकी सेवा करने लगीं। कहने लगे कि 'भैया! बहुत दिनके बाद आये हो, यहाँ कुछ दिन आपको ठहरना चाहिये।' खानेकी-पीनेकी बार-बार मनुहार करने लगे।

सुदामाने सोचा कि हम यहाँ जबतक हैं, तबतक ये हमारे साथ ही लगे रहेंगे—ये बड़े आदमी हैं, न मालूम इनका क्या काम आवश्यक है, इसलिये यहाँ ज्यादा नहीं रहना चाहिये। सुदामा चलना चाहते और भगवान् बार-बार खुशामद करते—निहोरा करते। अन्तमें सुदामाने कहा कि भैया! तुमसे मिलना ही था सो मिलना तो हो गया, अब हम वापस जायँगे। बहुत कहने-सुननेपर भी सुदामा नहीं रुके और आखिरमें वापस लौट गये। रास्तेमें विचार करने लगे कि मेरी स्त्रीने मुझे दरिद्रताकी दृष्टिसे भेजा था, किंतु मैं यहाँ आकर अपने प्यारे मित्रसे मिलनेकी यह बात कैसे कहूँगा? हमारे मित्रने भी इस विषयमें कुछ नहीं कहा। हमारे लिये यह सौभाग्यकी बात है—परम हर्षकी बात है। कहीं यदि वे पूछ बैठते तो अपनी दरिद्रताकी बात कहनेमें मुझे मुश्किल हो जाती; क्योंकि मुझसे झूठ कहना भी नहीं बनता। यदि वे कुछ देते तो लेते भी नहीं बनता। हम प्रेमसे आये कोई चीज लेनेके लिये नहीं। भगवान् भी अन्तर्यामी हैं, हमारे हृदयकी बात जान गये, इसलिये उन्होंने मुझे कुछ दिया भी नहीं। यह हमारे बहुत सौभाग्यकी बात है। देते तो हमारे प्रेममें एक कलंक

लग जाता। भगवान् बड़े प्रेमी हैं। अहा! कैसे गजबका है उनका प्रेम, ऐसे राजराजेश्वर होकर—इस प्रकारके ऐश्वर्यशाली होकर मुझ-जैसे एक तुच्छ गरीब ब्राह्मणके साथ इतना प्रेम करना—यह आश्चर्यकी बात है, ऐसा भगवान् ही कर सकते हैं, दूसरा कौन कर सकता है। भगवान्‌के उस बर्तावको, भगवान्‌के उस प्रेमको बार-बार याद करते हुए, मुग्ध होते हुए सुदामा चलने लगे। इस प्रकार चलते-चलते अपने घरपर आ गये। घरपर आकर देखते हैं कि जहाँ अपना घर था, फूसकी झोपड़ी थी, वह तो नहीं है, वहाँ एक राजाका महल खड़ा है। फिर सोचा कि यह कोई दूसरा गाँव होगा। अपने गाँवमें तो ऐसा कोई मकान नहीं था, और इतने दिनमें महल बन नहीं सकता। हो सकता है मैं दूसरे गाँवमें आ गया। अनजानेके समान देखने लगे और कहने लगे—देखनेसे तो यही मालूम होता है कि अपना ही गाँव है; क्योंकि और सब तो ठीक है, किंतु हमारी झोपड़ी नहीं है, फिर आश्चर्यमें पड़ गये। देखने लगे, कहने लगे—मुझे कोई भ्रम तो नहीं हो गया है, फिर कहते हैं—भ्रम तो नहीं है, स्वप्न भी नहीं है, जागता हूँ, गाँव भी वही है, फिर कहने लगे कि गाँव भी एक-समान कई होते हैं, हमारा गाँव शायद दूर होगा, पर यह है तो हमारे गाँवके जैसा ही, किंतु यह हमारा गाँव नहीं है; क्योंकि हमारे गाँवमें ऐसा सोनेका महल नहीं था। फिर यह सब देखकर देखा कि एक कोई राजाकी रानी है और उसके साथ बहुत-सी दासियाँ हैं। यद्यपि वह सुदामाकी स्त्री थी और वे दासियाँ उनकी सेवा करनेवाली थीं। उनको देखकर सुदामाने यह समझा कि किसी राजाकी रानी है, किसी राजाका महल है। मैं तो गलतीसे यहाँ आ गया। यह देखकर जब वापस जाने लगे तो उनकी स्त्रीने आगे बढ़कर उनसे कहा कि 'महाराज! क्या आपने मुझे पहचाना नहीं? मैं आपकी धर्मपत्नी हूँ न!' इतना कहकर वह उनके पास आने लगी तो सुदामाने उससे मुँह मोड़

लिया, सोचने लगे कि न मालूम किस राजाकी रानी है। जब उसने अपना पर्दा दूर किया और अपना परिचय दिया कि मैं आपकी ही धर्मपत्नी हूँ। आप इस प्रकार कैसे उपेक्षा कर रहे हैं। उन्होंने पूछा—'यह महल किसका है? तू ऐसी कैसे हो गयी और तेरे साथमें ये सब कौन हैं?' उसने कहा—'प्रभो! आप जब महाराज श्रीकृष्णके पास गये तो उन्होंने मुहूर्तमात्रमें ये सब रचना रच दी। अपने-जैसा ही महल बना दिया। उन्होंने अपनी धर्मपत्नीके जैसे ही मेरे लिये आभूषण-वस्त्र यहाँ भेज दिये, दासियाँ भेज दीं। यह महल आपका है और मैं आपकी हूँ, ये दासियाँ आपकी हैं, इतना ऐश्वर्य भेज दिया है कि जिसकी कोई सीमा नहीं है।

सुदामा महलके अंदर जाकर देखते हैं तो जैसा द्वारकामें भगवान्‌के महलमें देखा था ठीक वही ऐश्वर्य, वे ही सब चीजें वहाँ देखने लगे। उसे देखकर सुदामाको और भी आश्चर्य हुआ कहने लगे कि 'देखो भगवान्‌ने कुछ कहा तो नहीं, पर मेरे अनजाने, बिना कहे मुझे ऐसा बना दिया।'

इसलिये भगवान्‌की दोस्तीकी ओर देखकर खयाल करना चाहिये और शिक्षा लेनी चाहिये। हमलोगोंको भी अपने मित्रोंके साथ ऐसा ही व्यवहार करना चाहिये। अपने मित्रकी यदि हम सहायता करनेके लायक हों तो सहायता करनी चाहिये। इसकी उसे खबर भी नहीं देनी चाहिये कि मैंने तुम्हारी सहायता की है। स्वयं उसे मालूम हो जाय तो दूसरी बात है, लेकिन अपनी ओरसे उसे जनाना नहीं चाहिये। जैसे भगवान् कृष्णने सुदामाको नहीं जनाया। भगवान् इतने बड़े होकर भी सुदामाको अपने समान समझकर उसी प्रेमसे उनसे प्रेम करने लगे जैसे बाल्यावस्थामें गुरुकुलमें रहकर प्रेम करते थे, उसी प्रकारसे गलबाँहसे मिलना और प्रेम करना, आदर करना, सत्कार करना। सुदामा इस व्यवहारको देखकर बर्दाश्त नहीं कर

सके, वहाँ उनके रहनेकी हिम्मत नहीं हुई। इस प्रकारसे भगवान्‌के प्रेमका जो भाव है, व्यवहार है उसको याद कर लेनेसे मनमें एक अलौकिक भाव पैदा होता है कि भगवान् जब ऐसे प्रेमी हैं, इस प्रकारसे प्रेम करनेवाले हैं तो मनुष्यको भगवान्‌से ही प्रेम करना चाहिये।

भगवान्‌को छोड़कर हम यदि दूसरी चीजसे, पदार्थसे, मनुष्यसे प्रेम करते हैं तो यह हमारी नीचता है, बेसमझी है, हमारे लिये दुःखकी बात है, लज्जाकी बात है, शोककी बात है। भगवान्‌का जो स्वभाव है, भगवान्‌में जो अनन्त गुण हैं, उनके एक-एक गुणकी तरफ हम खयाल करके देखें तो आश्चर्य होता है, हमको मुग्ध होना चाहिये। भगवान् इसी प्रकार अपने प्यारे प्रेमियोंसे प्रेम किया करते थे। ऐसे ही ग्वाल-बालोंके साथ बालक-अवस्थामें प्रेम किया करते थे। उनके साथ ऐसा नहीं समझते थे कि मैं तुमसे अधिक हूँ और तू मुझसे कमजोर है। वे सब सखा भी इसी प्रकार ऐसा ही प्रेम करते थे जैसे कोई प्रेमी अपने प्रेमी मित्रके साथ प्रेम करता है। गोपियोंके भी साथ बाल्यावस्थामें भगवान्‌का जो प्रेम है वह भी एक प्रकारसे अलौकिक प्रेम ही था।

जब सायंकाल भगवान् गौओं और बछड़ोंको चराकर उनके साथ आया करते थे तो गौओं और बछड़ोंके चरणोंकी धूलि भगवान्‌के ऊपर उड़कर छा जाती थी, उस समय भगवान्‌का गो-धूलि-धूसरित वह शरीर एक अलग ही शोभा देता था। सारे शरीरके पसीनेकी बूँदें उसमें आ जाती थीं। धूलके कण प्रवेश कर जाते थे, एक अलग ही शोभा हो जाती थी। गो-धूलिसे धूसरित भगवान्‌का ऐसा मुखारविन्द है, ऐसा भगवान्‌का स्वरूप है। गौके चरणोंकी धूलिसे महीन सूक्ष्म धूलि उड़कर जो पड़ती थी उस धूलि-धूसरित शरीरको देखकर सब गोपियाँ मुग्ध हो जाया करती थीं। भगवान्‌के आनेके पहले ही दरवाजेपर रहती

थीं और देख-देखकर मुग्ध होती थीं। जब कभी-कभी भगवान् रात्रिके समय वंशी बजाते थे, तब सब गोपियाँ इकट्ठी हो जाती थीं। रासपंचाध्यायीमें बतलाया गया है कि आश्विनकी पूर्णिमाकी रात्रिमें भगवान्ने एक बार वंशी बजायी तो बहुत-सी गोपियाँ अपने घरोंको छोड़कर वहाँ पहुँच गयीं। तब भगवान्ने उनसे कहा कि अरी गोपियो! रात्रिके समय अपने पतियोंको, पुत्रोंको छोड़कर स्त्रियोंको किसी दूसरे पुरुषके पास नहीं जाना चाहिये। इसलिये तुमलोगोंको अपने घर वापस चले जाना चाहिये। उन्होंने कहा कि 'देखो, हमलोग किसी पुरुषके पास नहीं आयी हैं, आप कोई पर-पुरुष नहीं हैं, आप तो साक्षात् परमात्मा हैं, आप केवल गोपीपुत्र हों ऐसी बात नहीं है, आप जगके पति हैं, सबके पति हैं, हमारे पतियोंके भी पति हैं, इसलिये हमलोग आपके पास आयी हैं। कोई यह सुनकर लज्जित हो गयी, मुग्ध हो गयी, भगवान्से कहने लगी—आप कहते हैं कि क्यों आयी हो? आप बतायें, आपने वंशी क्यों बजायी? आपने तो निमन्त्रण देकर सबको बुलाया और फिर कहते हैं कि क्यों आयी? तदनन्तर भगवान् उनके साथ नाचने-गाने लगे। यह जो उनका नृत्य करना, गाना-बजाना था यही रास करना था। इसके बाद जब सभी प्रेममें मुग्ध हो गयीं तो एक प्रधान गोपीको लेकर भगवान् आगे जाकर अन्तर्धान हो गये, गायब हो गये। अब सब भगवान्को न देखकर विचार करने लगीं कि भगवान् कहाँ चले गये? दूर-दूरतक खोज करने लगीं। भगवान् कहाँ मिलते? एक प्रधान गोपीको (सम्भव है राधाजी ही हो सकती हैं, नाम नहीं लिखा है) लेकर भगवान् घोर वनमें चले गये। आगे जाकर वह गोपी बोलने लगी—बहुत दूर आ गये, इसलिये मैं थक गयी और अब पैदल नहीं चल सकती, आप अपने कंधेपर मुझे बैठाकर ले चलें।

भगवान्ने कहा—बड़ी अच्छी बात है। भगवान् बैठ गये और

वह अपना पैर भगवान्‌के ऊपर रखने लगी। इतनी देरमें भगवान् गायब हो गये। वहाँसे भी अन्तर्धान हो गये, अब वह भी भगवान्‌के विरहकी व्याकुलतामें पागलकी तरह घोर जंगलमें ढूँढ़ने लगी कि भगवान् कहाँ चले गये और भी जो बहुत-सी गोपियाँ भगवान्‌की खोजमें थीं वे भी खोजती-खोजती वहाँ आयीं जहाँ भगवान् और प्रधान गोपीके चरणोंके चिह्न पड़े थे। उन्होंने आपसमें सोचा कि जिस एक गोपीको हम सब नहीं देख रही थीं, वह भी भगवान्‌के साथ है। देखो, दोनोंके चरण-चिह्न यहाँ दीख रहे हैं। एक-दूसरेको दिखाने लगीं और कहने लगीं कि यह देखो—मालूम होता है यहाँ वे इस जगह घूमे हैं, इस झाड़में आये हैं उनका यहाँतक साथ है—कहती-देखती-सुनती इस प्रकारसे घूमते-घूमते आगे आयीं। आगे जानेपर रास्तेमें भगवान्‌के बैठनेका चिह्न दीखा। साथ ही गोपीके चरणोंका भी चिह्न दीखा। इसके बाद और आगे बढ़कर देखती हैं तो गोपीके चिह्न तो मिलते हैं, पर भगवान्‌के चिह्न नहीं दीखते। उन्होंने विचारा—भगवान् यहाँ किसी कामसे बैठे हैं पर इसके बाद उनके चरणोंका चिह्न नहीं मिलता, इससे मालूम होता है कि वह जैसे वहाँ हमें धोखा देकर गायब हो गया है ऐसे ही यहाँसे भी गायब है, फिर ढूँढ़ने लगीं। गोपियोंको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते प्रधान गोपी मिल गयी, उससे पूछा—क्या बात है? वह बोली—भगवान् मुझे लेकर रासमेंसे चले आये थे। मेरी इस-इस प्रकार उनसे बातचीत हुई फिर मुझे भी छोड़कर चले गये, अब वह नटखट कहाँ है, कुछ भी पता नहीं। मैं भी उसे ढूँढ़ रही हूँ जैसे तुम ढूँढ़ती हो, फिर आपसमें लीला करने लगीं। लीलाके समय आपसमें कोई अघासुर बनी तो कोई कृष्ण, कोई बकासुर तो कोई कृष्ण बनी। इस प्रकार गोपियाँ नकल करने लगीं।

भगवान्‌ने जिन-जिन असुरोंको पूर्वमें मारा था या जो लीला की थी उनकी नकल करने लगीं, अनुकरण करने लगीं। उसके

बाद भी भगवान् नहीं आये तो सब मिलकर व्याकुल हो गयीं और व्याकुल होकर भगवान्‌के लिये विलाप करने लगीं। विलाप करनेसे भगवान् फिर वहाँ प्रकट हो गये। जब वे प्रकट हो गये तो गोपियाँ उनसे कहने लगीं कि संसारमें मनुष्य तीन प्रकारके होते हैं। एक तो ऐसे होते हैं जो प्रेम करनेवालोंके साथ प्रेम करते हैं और दूसरे प्रेम नहीं करनेवालोंके साथमें भी प्रेम करते हैं और तीसरे प्रेम करनेवालोंके साथ भी प्रेम नहीं करते। इन तीन प्रकारकी श्रेणियोंमें आप कौन-सी श्रेणीमें हैं? उनके पूछनेका यह आशय था। भगवान्‌ने कहा कि 'मैं किसी श्रेणीमें नहीं हूँ, मैं सभी श्रेणियोंसे अलग ही हूँ। तुम सब ऐसा न समझो कि तुम तो मुझसे प्रेम करती हो और मैं तुमसे प्रेम नहीं करता ऐसी बात नहीं है। मैं अन्तर्धान हो गया और तुम मुझे चाहती रही तो इसका कारण यही है कि प्रेम बढ़ानेके लिये ही मैंने ऐसा किया।' तात्पर्य यह कि भगवान् जो वियोग देते हैं, वह प्रेम बढ़ानेके लिये ही देते हैं, भगवान्‌के विरहकी व्याकुलतामें जो तड़पन होती है वह तड़पन संयोगमें नहीं होती। भगवान्‌का ध्यान जैसा विरहकी व्याकुलतामें होता है ऐसा संयोगमें कहाँ। संयोगमें तो भगवान् पास ही हैं। विरहकी व्याकुलतामें भगवान्‌की स्मृति रहती है।

कोई एक गोपी किसी दूसरी एक गोपीसे कह रही है कि मैं क्या करूँ? यह कृष्ण इस प्रकारका जादू कर देता है कि उसे न तो मैं भुला ही सकती हूँ और न वह आकर मुझे दर्शन ही देता है। यदि मैं उसे भुला दूँ तो व्याकुलता तो न हो, ऐसा कौन-सा उपाय करूँ। इस व्याकुलताको कैसे दूर करूँ, यह तो मिलनेसे ही दूर हो सकती है अथवा उसकी स्मृति न हो तो भी दूर हो सकती है। मैं भुलाना चाहती हूँ, किंतु मैं क्या करूँ बलात् उसका चिन्तन होता है, भुलानेसे भी नहीं भुला सकती। कोई गोपी किसी गोपीसे कहती है कि मैं हर समय भगवान्‌का

ध्यान करती हूँ तो मुझे यह भय लगता है कि कहीं मैं ध्यान करती-करती भगवान् कृष्ण न बन जाऊँ। दूसरी गोपीने समझाया, कोई हर्ज नहीं, बन जायगी तो क्या आपत्ति है? भगवान् भी तो तेरा ध्यान करते हैं। तू कृष्ण बन जायगी तो भगवान् गोपी बन जायँगे। इस प्रकार तुम्हारा और कृष्णका सम्बन्ध हमेशा कायम रहेगा। हरेक प्रकारकी बातें परस्परमें गोपियाँ किया करती थीं। जब उद्धव गये तब उनके साथ भी ऐसी ही बातें करने लगीं। बोलीं कि उद्धव! क्या भगवान् कभी हमें याद करते हैं? क्या किसी समय वे हमसे मिलेंगे। फिर कहतीं अरे, वे अब क्यों मिलेंगे! वे तो अब राजराजेश्वर हो गये और राजरानियोंसे मिलते हैं। हम सब तो जंगलमें रहनेवाली गँवारी हैं। हमसे क्यों मिलेंगे? हमसे मिलनेकी उनको क्या पड़ी है, इस प्रकारकी अनेक बातें भी कभी-कभी वे किया करती थीं। उनकी बातोंमें प्रेम भरा रहता था। एक ही चीज थी और दूसरी नहीं। यह देखकर उद्धव भी चकित हो गये। उद्धव आये थे गोपियोंको ज्ञान देने, ज्ञान सिखाने, योग सिखाने, पर उनके प्रेमको देखकर इतने मुग्ध हो गये कि मन-ही-मन कहने लगे कि ओहो! इनका प्रेम कैसा अलौकिक प्रेम है। यदि भगवान् मुझे लता-पता, गुल्म आदि भी बनावें तो व्रजमें ही बनावें। जिससे प्रेमरसमें चूर इन गोपियोंके चरणोंकी धूलि भी हमारे ऊपर पड़ जाय तो हमारा कल्याण हो जाय। ऐसा कहकर उद्धव एकदम प्रेममें मुग्ध हो गये।

निष्कामभावसे सेवा—कल्याणका साधन

हम सभी भाइयोंको समयकी कीमत समझनी चाहिये। सबेरेसे शामतक जो भी काम करना है ठीक समयसे किया जाय। हमलोग समयकी इज्जत नहीं करते तो समय हमारी इज्जत कैसे करेगा। हम जिसका आदर नहीं करेंगे, वह हमारा आदर कैसे करेगा। हमें यह बात सीखनी चाहिये कि किसीमें कोई अच्छी बात हो तो ग्रहण कर लेनी चाहिये। सत्संग-स्थलपर भी आवें तो समयके पूर्व पहुँचना चाहिये। सीतामऊके महाराज साहब सत्संगमें ठीक समयसे आ जाते हैं। समय समाप्त होनेपर चाहे कैसी भी बात हो वे उठकर चले जाते हैं। यदि सत्संग कभी समाप्त नहीं हुआ तो दो-चार मिनट अधिक रह तो जाते पर आनेमें कभी विलम्ब नहीं करते, उनकी यह बात ग्रहण करनेयोग्य है। वे अपने समयका पूरी तरह सदुपयोग करते, किस समय क्या काम करना है यह उनका निश्चित रहता है, मतलब यह कि सोनेके सिवाय उनके आठ पहर सभी काम साधन-ही-साधन हैं। रास्ते चलते वक्त, भोजनके वक्त सभी समय साधना करना। कोई भी टाइम खाली नहीं रखना। चलते, उठते, बैठते, सोते, खाते-पीते सब समय साधन करना। सीढ़ियोंपर चढ़ते तो भगवान्‌की स्तुति करते हुए चढ़ते। सोनेके समय भगवान्‌का कार्य साधनरूपमें करते हुए सोते। वे कहते कि बिना कामके मैं एक मिनट भी क्यों खोऊँ, उनकी यह बात अनुकरणीय है।

आपलोगोंमें प्रायः हरेक माता-बहन-भाईका समय बहुत-सा फालतू जा रहा है। इस विषयमें—भजन करनेमें न तो किसीकी शर्म करनी है, न लिहाज। अपना समय फालतू नहीं बिताना चाहिये।

मेरेमें यह दोष है कि लोग आकर मेरा समय व्यर्थमें ले जाते हैं, यद्यपि मैं तो उसे व्यर्थ नहीं समझता। कारण कि एक तुच्छ-से-तुच्छ भिखारीका भी मैं अपने ऊपर अधिकार मानता हूँ और करोड़पतिका भी अपनेपर अधिकार मानता हूँ। एक राजाका भी अपनेपर अधिकार मानता हूँ, एक साधारण पुरुष या स्त्रीका भी अपने ऊपर अधिकार मानता हूँ। यदि समय लेनेवालोंको संतोष है तो मैं समझता हूँ कि मेरा समय फालतू नहीं गया।

यदि नीतिकी दृष्टिसे मूल्यकी कल्पना करके विचार करें तो दो-चार रुपयेकी आर्थिक सहायता चाहनेवाला आदमी तो समय ले लेता है और उच्च कोटिका साधक साधनकी, जप, ध्यान, परमात्मप्राप्तिकी बातोंको पूछनेके लिये समय नहीं मिलनेके कारण संकोचमें पड़कर वंचित रह जाता है। ऐसा होनेपर भी नीतिकी दृष्टिसे विचार करता हुआ भी मेरे स्वभावके दोषके कारण ऐसा हो जाता है, इसमें मेरे वशकी बात नहीं है। यदि ऐसा हो जाता है तो मुझे सभी भाई माफ कर दें। पर मेरा अनुकरण नहीं करें। आपलोगोंके लिये तो सबसे बढ़कर वही बात है कि अपना काम पहले बना लेना फिर दूसरी बात करनी। आपका असली स्वार्थ जिसमें सिद्ध हो, आपका परमार्थ जिसमें सिद्ध हो, उस कामपर ज्यादा दृष्टि डालनी चाहिये। मैं जो कामपर दृष्टि नहीं डालता हूँ, मेरी यह बात छोड़ देनी चाहिये। मेरेमें कोई बात आपकी दृष्टिमें अच्छी मालूम दे, उसका आप अनुकरण करें तो मेरी तरफसे कोई मनाही नहीं, पर यदि मेरेमें कोई खराब व्यसन हो तो उसकी आदत नहीं डालनी है, उस आदतका अनुकरण नहीं करना है। मैं आपलोगोंसे बहुत-सी बातें कहता हूँ कि यह करना चाहिये, वह करना चाहिये और उसे मैं नहीं कर सकता तो उस विषयमें यह विचार करना कि यह नहीं करते हैं तो मैं भी न करूँ, उसमें आपका नुकसान है।

माता-पिताकी सेवाके विषयमें मैं समय-समयपर प्रार्थना करता रहता हूँ कि उनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये। यदि उनको ईश्वर मानकर उनकी सेवा की जाय तो ईश्वरकी भक्ति करनेसे जो लाभ है उसमें उससे कम लाभ नहीं है।' यदि इस विषयमें कोई मेरा अनुकरण करे तो मैं इस विषयमें सदा ही कमजोर रहा हूँ। माता-पिताकी सेवाके विषयमें मैं जिस प्रकार आपलोगोंसे कहता हूँ माता-पिताकी ऐसी सेवा मेरे द्वारा नहीं बनी, अतः उस बातको न लेकर शास्त्र जो कहते हैं उसपर और जो मैं प्रार्थना करता हूँ उसपर ही ज्यादा ध्यान देना चाहिये। माता-पिताको साक्षात् ईश्वर समझकर उनकी सेवा करनी चाहिये। शास्त्र कहते हैं—'**मातृदेवो भव**', '**पितृदेवो भव**', '**आचार्यदेवो भव**', '**अतिथिदेवो भव**'। माताको, पिताको, आचार्यको यानी गुरुको और अतिथिको यानी जो अपने यहाँ अभ्यागत आये उसको ईश्वरके समान समझकर उसका आदर-सत्कार करना चाहिये—उनकी सेवा करनी चाहिये। मैं इस प्रकार नहीं कर सका हूँ पर जो करते हैं उन्हें मैं आदरसे देखता हूँ, श्रद्धासे देखता हूँ, अपनेसे उन्हें पूज्य मानता हूँ। वे आगे जाकर मुझसे बढ़ सकते हैं; क्योंकि मैं तो इस विषयमें कमजोर रहा हूँ। इसी प्रकार बहुत-सी बातें हैं।

कर्मयोगके विषयमें सबसे बराबर ही निवेदन करता हूँ कि ऐसी क्रिया करनी चाहिये, ऐसा कर्म करना चाहिये, ऐसी जीविकाका कार्य करना चाहिये कि उस जीविकाका अन्न इतना पवित्र हो जाय कि कोई उसके घरका प्रसाद पा ले तो उसकी आत्मा भी शुद्ध हो जाय और यह समझे कि यह प्रसाद है। भगवान्‌के मन्दिरमें भगवान्‌का जो भोग लगाया जाता है, उस बचे हुए प्रसादसे भी इसका ज्यादा महत्त्व मालूम देता है। क्योंकि उस प्रसादके खानेसे यह बात देखनेमें

आती है कि यदि किसीकी श्रद्धा हो तो भले ही उसकी आत्मा शुद्ध होकर कल्याण हो जाय, पर प्राय: स्वभावत: यह बात देखनेमें नहीं आती। क्योंकि श्रद्धाकी कमी तो है ही, इसके अतिरिक्त वस्तुत: वह जो भोग लगाया गया, वह भोग भगवान्‌की मूर्तिको लगाया गया, साक्षात् भगवान्‌को नहीं लगाया गया। जो आदमी श्रद्धासे भगवान्‌को ही भोग लगाना समझता है उसके लिये भगवान्‌को ही भोग लगाना है। भाव प्रधान है। भावके अनुसार प्रत्यक्ष फल है—

न काष्ठे विद्यते देवो न पाषाणे न मृण्मये।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद् भावो हि कारणम्॥

काठकी मूर्तिमें कोई देवता नहीं है, न पाषाणकी मूर्तिमें कोई देवता है, न मिट्टीकी मूर्तिमें कोई देवता है। भाव, श्रद्धासे ही देवता विराजमान होते हैं। इसलिये इसमें श्रद्धा ही प्रधान कारण है। जैसे धातु और पाषाणकी मूर्तिमें ईश्वरकी भावना करनेसे ईश्वरकी प्राप्ति सम्भव है, इसी प्रकार माता-पितामें ईश्वरकी भावना करनेसे ईश्वरकी प्राप्ति होनेमें कोई भी शंका नहीं है। इसी प्रकार यदि स्त्री अपने पतिमें ईश्वरकी भावना करके उसकी उपासना करे तो उसे परमात्माकी प्राप्ति बहुत शीघ्र ही हो सकती है। जैसे कृकल वैश्यकी स्त्री सुकलाको परमात्माकी प्राप्ति हो गयी। शुभाको भी अपने पातिव्रत्य-धर्मके प्रभावसे परमात्माकी प्राप्ति हो गयी। इसी तरहसे बहुत-सी स्त्रियोंने पातिव्रत्य-धर्मका पालन करके अपनी आत्माका उद्धार कर लिया और अपने पतिका भी उद्धार कर लिया। शाण्डिली एवं दीर्घा, इनके पति व्यभिचारी थे तो भी उन्होंने पातिव्रत्य-धर्मका पालन करके अपना कल्याण कर लिया और पतिका भी कल्याण कर लिया। पातिव्रत्य-धर्मका बड़ा भारी महत्त्व शास्त्रोंमें लिखा है। श्रीअनसूयाजीने कहा है—

बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई॥

(रा०च०मा०३।५।१८)

जो नारी छलको छोड़कर पातिव्रत्य-धर्मको धारण करती है वह बिना ही परिश्रमके परमगतिको प्राप्त कर लेती है, इसी प्रकार तुलाधार वैश्य सत्य व्यापारके द्वारा, न्याययुक्त व्यापारके द्वारा, परमगतिको प्राप्त हो गया। पद्मपुराणमें यह बात स्पष्ट लिखी है।

व्यापारमें स्वार्थका त्याग होना चाहिये और सबके साथ सम व्यवहार तथा सत्य व्यवहार होना चाहिये। उससे और भी ऊँचे दर्जेको प्राप्त हो सकता है। सत्य व्यवहार हो, सम व्यवहार हो और सर्वथा स्वार्थका त्याग नहीं हो तो उससे मुक्ति समय पाकर भले ही हो पर शीघ्र नहीं हो सकती। सर्वथा स्वार्थका त्याग करनेसे उसकी आत्माका कल्याण निश्चय ही हो जाता है; इतनी ही बात नहीं है, उसका अन्न इतना पवित्र हो जाता है कि दूसरा भी उसके अन्नका भक्षण करे तो उसके लिये वह अन्न प्रसाद हो जाय।

आजकल तो संसारमें झूठे महात्मा बनकर अपना उच्छिष्ट लोगोंको देते हैं और उस उच्छिष्टको प्रसादका रूप देते हैं, ऐसा पुरुष तो घोर नरकमें जानेका रास्ता बना रहा है; किंतु भगवान्‌की—ठाकुरजीकी जो मूर्ति मन्दिरमें है उसे भोग लगानेके बाद बचा हुआ प्रसाद तो प्रसाद है ही, किंतु उस प्रसादके महत्त्वसे ज्यादा महत्त्व उस सत्य, सम तथा स्वार्थरहित व्यवहार करनेवाले व्यापारीके अन्नका है। न्याययुक्त तथा समतापूर्ण एवं सर्वथा स्वार्थ-त्यागपूर्वक व्यापार करनेवाले व्यापारीके कमाये धनमें उद्धार करनेकी जितनी ताकत है उतनी ताकत किसीमें नहीं है, उसका अन्न तो उद्धार कर ही देता है। ऐसे व्यापारमें यह शक्ति आ जाती है कि जो कोई उसका अन्न भक्षण

करे उसकी बुद्धि भी शुद्ध होकर उसे परमात्माकी प्राप्तिके लिये पात्र बना सकती है। यह काम आप सबको करनेके लिये कह रहा हूँ। किंतु मैं नहीं कर सका। नहीं करके भी मैं इसे आदर देता हूँ, मन्दिरमें भगवान्के लगे प्रसादसे भी मैं इसे ज्यादा महत्त्व देता हूँ।

एक आदमी कामनाके लिये परमात्माका ध्यान करता है और एक आदमी सर्वथा स्वार्थको त्यागकर निष्काम-भावसे आचरण करता है। निष्काम-भावसे आचरण करनेवालेका बड़ा भारी महत्त्व है। इससे हमारी सारी क्रिया इतनी आदर्श बन सकती है कि उस क्रियाका दर्शन करनेसे दूसरेकी आत्मा पवित्र हो जाय। इस प्रकार निष्काम-भावसे, न्याययुक्त, सत्यतायुक्त, समतायुक्त उपार्जन किये हुए द्रव्यमें एक अलौकिक शक्ति आ जाती है। उस द्रव्यमें शक्ति आये, उसका तो कहना ही क्या है, उस कर्ताकी क्रियामें ऐसी अलौकिक शक्ति आ जाती है कि जिसके दर्शन करनेसे दूसरेके मनमें ऐसा भाव पैदा हो जाय कि मैं भी ऐसा ही बनूँ।

स्वामी मंगलनाथजी महाराजकी उपरतियुक्त तथा वैराग्ययुक्त मुद्रा देखकर मेरे दिलमें यह भाव पैदा होता था कि मैं भी ऐसा कैसे बनूँ। यह मुझमें बीती हुई बात है। जब एक मनुष्यके दर्शन करनेसे इस प्रकारका असर पड़ता है तो उसके बर्तावका, व्यवहारका और अधिक-से-अधिक असर पड़ना चाहिये और उसके द्वारा उपार्जित किये हुए द्रव्यकी शक्ति उससे भी ज्यादा होनी चाहिये। शास्त्र कहते हैं कि महात्मालोग तीर्थको भी तीर्थ बना देते हैं, वे जिस भूमिपर पैर रखते हैं वह भूमि पवित्र हो जाती है। जो भगवत्प्राप्त पुरुष हैं और जिनको भगवान्ने अपना अधिकार देकर संसारमें भेजा है उनकी तो महिमा ही अपार है। उनके तो दर्शन, भाषण, स्पर्श,

वार्तालाप तथा चिन्तनसे मनुष्यकी आत्मा पवित्र हो सकती है। ऐसे-ऐसे पुरुष संसारमें हो चुके हैं, इससे भी बढ़कर हो चुके हैं। पूरी पृथ्वीमें जितने मनुष्य हैं सबका उद्धार करनेवाले, सबको परमधाममें पहुँचानेवाले 'कीर्तिमान्'-जैसे राजा हो गये हैं। उनकी अखण्ड कीर्ति संसारमें अभी मौजूद है, नाम भी उनका कीर्तिमान् है। संसारमें उनकी कीर्ति भी बड़े ऊँचे दर्जेकी है। यदि मनुष्य ऐसा बन सकता है कि दुनियामें जितने मनुष्य हैं उन सबका उद्धार करनेकी शक्ति उसमें आ सकती है फिर उनकी क्रियाको देखकर अनुकरण करनेपर, उनकी आज्ञाका पालन करनेपर मनुष्यका कल्याण हो जाता है, इसमें कौन-से आश्चर्यकी बात है। भगवान् स्वयं कहते हैं—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

(गीता ३।२१)

श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, दूसरे पुरुष भी उसी प्रकारसे आचरण करते हैं। श्रेष्ठ पुरुष जिस बातको प्रमाणित कर देता है दूसरे मनुष्य उसीको ठीक समझकर उसीके अनुसार अपना बर्ताव करते हैं। इसका फल होता है परमात्माकी प्राप्ति। प्रश्न होता है कि परमात्माकी प्राप्तिकी बात तो इस श्लोकमें नहीं बतलायी गयी है। यह बात गीताके १३वें अध्यायके चौबीसवें और पचीसवें श्लोकमें कही गयी है, जैसे—

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे॥

(गीता १३।२४)

इसका भाव यह है कि कितने आदमी तो अपनी बुद्धिसे ध्यानके द्वारा उस परमात्माका साक्षात्कार अपने हृदयमें करते हैं और कितने ज्ञानयोगके द्वारा उस परमात्माका साक्षात्कार अपने

हृदयमें करते हैं और कितने निष्कामकर्मके द्वारा यानी कर्मयोगके द्वारा उस परमात्माका अपने हृदयमें अनुभव करते हैं। किंतु जो न ध्यानयोग जानता है, न कर्मयोग और न ज्ञानयोग यानी कुछ भी नहीं जानता, ऐसे मूढ़के लिये यह कहा गया है—

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥

(१३।२५)

जो इस प्रकार साधनको नहीं जाननेवाले मूढ़ हैं वे जाननेवाले महात्मा पुरुषोंके पास जाकर उनके बतलाये हुए मार्गपर चलें तथा उनकी बात सुनें और सुनकर उसके अनुसार साधन करें। इस प्रकार सुननेके जो परायण होते हैं वे भी संसार-सागरको तर जाते हैं, फिर साधन करनेवाले तर जायँ इसमें तो कहना ही क्या है? जो सिद्ध महात्मा पुरुष हैं, अच्छे पुरुष हैं उनकी बात सुनकर उसके अनुसार करनेवाले भी तर जाते हैं—

मैं यदि आपकी सेवा करूँ या आपका लौकिक या पारलौकिक कोई उपकार करूँ, किसी भी प्रकारका आपका हित करूँ, उसका इतना महत्त्व नहीं है जितना कि मेरे व्यापारको देखकर, व्यवहारको देखकर, बर्तावको देखकर, मेरी क्रियाको देखकर आपके ऊपर उसकी छाप पड़े और आप भी मेरे-जैसे बन जायँ। कोई मनुष्य अहंकारका त्याग करके, स्वार्थका त्याग करके, निष्काम-भावसे आचरण करे तो उस एकसे बहुत-से बन जाते हैं। यह बात हमलोगोंको पग-पगमें सीखनी चाहिये। हमलोग देखते हैं कि कोई भी वृक्ष है, उसके बीज झड़कर भूमिपर गिर जाते हैं और फिर वे ही वृक्ष होकर वैसे ही फल देनेवाले बन जाते हैं। जैसे एक आमका वृक्ष है और उससे बहुत-से आम टूटकर गिर पड़े, उनमेंसे कोई गुठली वहाँ खेतमें रह जाती है और धूलमें मिल जाती है तो फिर समय

पाकर उसमेंसे भी फूटकर जो आमका वृक्ष निकलता है, वह वृक्ष भी वैसा ही आम देता है जैसा कि वह जिससे पैदा हुआ था। किसी भी विषयमें आप इस बातको घटाकर देख लें। अच्छे पुरुषका चरित्र एवं बर्ताव बीज है। वह बीज जिसमें आरोपित हो जाता है वह भी वैसा ही बन जाता है। आगे वह भी उसी प्रकारकी चेष्टा करे तो इसी प्रकारसे परम्परा चल जाय। ये बातें शास्त्रोंमें लिखी हैं। गीतामें भी भगवान् कहते हैं—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप॥
स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥

(४।१—३)

हे अर्जुन! इस अविनाशी योगका, सृष्टिके आदिमें मैंने विवस्वान्—सूर्यके प्रति उपदेश दिया था फिर सूर्यने अपने पुत्र मनु और फिर मनुने अपने पुत्र इक्ष्वाकुसे इस अविनाशी योगकी व्याख्या की थी। इस प्रकार परम्परासे प्राप्त यह योग पीढ़ियोंतक चलता रहा। किंतु अब उसकी परम्परा प्रायः नष्ट हो गयी। यही पुरातन योग जो सूर्यके प्रति मैंने कहा था आज मैंने तुमसे कहा है। गीताके दूसरे अध्यायके ४०वें श्लोकसे लेकर तीसरे अध्यायके अन्ततक वही पुरातन योग आज मैंने तुमसे कहा है। क्योंकि तू मेरा भक्त है और सखा है। यह परम गोपनीय बात है, ऐसी गोपनीय बात आज मैंने तुमसे कही है। कहनेका अभिप्राय यह है कि इस प्रकारसे बीज-वृक्षके न्यायकी भाँति यह बात वर्षोंतक चली।

असली बात यह है कि आपमें कोई अच्छी बात हो और

आप दूसरोंके साथ अच्छा व्यवहार कर रहे हैं तथा उस व्यवहारकी छाप दूसरेपर पड़ रही है—असर पड़ रहा है तो वह भी आपके जैसा बन सकता है। आपकी इस प्रकारकी सेवा बड़ी उच्च कोटिकी सेवा है। उसका आपने जो उपकार किया, उसके शरीरकी या किसी भी प्रकारकी मदद की, उस मददसे बढ़कर यह आपकी बड़ी मदद है, क्योंकि उसे आपने अपने समान बना लिया। जैसे एक विरक्त महात्मा पुरुष है और वह संसारमें वैराग्यके परमाणुका वाणीद्वारा, नेत्रोंद्वारा, मनके द्वारा, शरीरके द्वारा, हर वक्त वितरण करता हुआ विचरण करता है। इसी बातको खयालमें रखकर महर्षि पतंजलिने पातंजल-योगदर्शनके पहले पादमें—'**वीतरागविषयं वा चित्तम्**' यह बात कही है। इस सूत्रमें '**वीतरागविषयम्**' पद चित्तका विशेषण है। चित्त कैसा होना चाहिये? वीतराग-विषय! मतलब यह कि जो वीतराग पुरुष है यानी जिसमें राग बीत गया है, जिसमें राग नहीं है ऐसा जो विरक्त पुरुष है उसे हम याद करें तो इससे चित्त एकाग्र हो जाता है, ध्यानमें लग जाता है—चित्त स्थिर हो जाता है। विरक्त पुरुषको याद करनेसे भी चित्त स्थिर हो जाता है, महात्माको भी याद करनेसे चित्त स्थिर हो जाता है। महात्माको कैसे पहचानें? महात्माको पहचाननेकी कोई जरूरत नहीं। आपकी जिसके ऊपर श्रद्धा हो, आपकी दृष्टिमें जो महात्मा हो, बस उसके स्मरण करनेसे, चिन्तन करनेसे, आपके चित्त और बुद्धि दोनों स्थिर हो सकते हैं। यह बात भी महर्षि पतंजलिने कही है—'**यथाभिमतध्यानाद्वा।**' मतलब यह कि आपको जो अभिमत हो, आपकी दृष्टिमें जो आपके मनके अनुकूल हो, ऐसे वीतराग महात्माके ध्यानसे भी चित्त स्थिर हो जाता है, चित्त एकाग्र हो जाता है। यह बात युक्तिसंगत भी मालूम देती है, शास्त्रसम्मत भी मालूम देती है। फिर भगवान्‌के ध्यानसे चित्त

स्थिर हो जाय, उसमें तो कहना ही क्या है। किंतु भगवान्‌में श्रद्धा होनी चाहिये, प्रेम होना चाहिये।

हमलोग जो यह कहते हैं कि हमारा ध्यान नहीं लगता, उसका कारण क्या है? कारण यह है कि हम सुनी-सुनायी बातका ध्यान करना चाहते हैं। वास्तवमें ध्येयमें न हमारा प्रेम है, न हमारी श्रद्धा। इसलिये श्रद्धा और प्रेमकी कमीके कारण ध्यान नहीं होता। परमात्माका ध्यान यदि एक बार हो जाय और उसका रस आ जाय तो उसे छोड़ ही कैसे सकते हैं, जैसे लड़केको एक तुच्छ-सा सुख जो अपनी माताके स्तनमें मिलता है—उसके स्तनपान करनेसे दूधका सुख मिलता है—उसको लड़का जल्दीसे छोड़ना नहीं चाहता जबतक उसका पेट नहीं भरता। फिर बताइये ध्यानका इतना आनन्द कोई कैसे छोड़ सकता है। हम छोड़ देते हैं तो वास्तवमें हमें यह समझना चाहिये कि इसमें इतना आनन्द नहीं आता। उसमें तो आनन्द अपार है, आनन्दकी कोई सीमा थोड़े ही है। सत्-चित्-आनन्दघन-निर्गुण-निराकार परमात्माका ध्यान एक बार किसीको लग जाय तो उसकी सामर्थ्य नहीं है कि वह उसे छोड़ सके या दूसरा कोई उसे छुड़ा सके। उससे बढ़कर कोई दूसरी वस्तु हो तब तो उसे वह छोड़े। वह उसके हृदयमें अंकित हो जाती है। वह तो हर वक्त उसके आनन्दमें डूबा रहता है। संसारमें आपको जो सुख प्रतीत होता है यह तो मिथ्या है, केवल प्रतीत ही होता है वास्तवमें है नहीं। अगर वास्तवमें हो तो उसका विनाश नहीं होना चाहिये। क्योंकि जो सत् वस्तु है उसका कभी अभाव नहीं होता और जो मिथ्या वस्तु है वह कभी रहती नहीं—

'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।'

संसारके विषय-भोगोंमें जो सुख प्रतीत होता है यह तो क्षणिक है; अल्प है। चाहे देश-सम्बन्धी हो, चाहे काल-

सम्बन्धी हो या वस्तु-सम्बन्धी। वस्तु भी नापवाली है, छोटी है, अल्प है। थोड़े समयमें ही होता है, इसलिये वह भी अल्पकालीन है और देशसे भी अल्प है, किसी एक इन्द्रियको सुख होता है। उस परमात्माका सुख तो सर्वदेशीय और अपरिमित है। चाहे देश करके हो, काल करके हो या वस्तु करके हो। सर्वथा-सर्वदा अपरिमित है। फिर भी आप कहें कि ठीक तो है पर ऐसा होनेपर भी जितनी देरतक वह बात सुनते हैं, ध्यान करते हैं उतनी देर तो खूब आनन्द होता है, बादमें वैसी स्थिति नहीं होती। इसका कारण यह है कि आपको अभी असली आनन्द नहीं आया। जिसका ध्यानावस्थामें आप अनुभव करते हैं वह असली आनन्दका आभास है—एक प्रतिबिम्बमात्र है। असली आनन्दकी प्राप्ति होनेके बाद तो उसकी स्थिति गिर ही नहीं सकती। वास्तवमें प्रतिबिम्ब भी हम क्या कहें जो आप अनुभव करते हैं, प्रतिबिम्बका भी एक आभासमात्र है। आपकी बुद्धिमें जो प्रतिबिम्ब पड़ता है उसीका आप अनुभव करते हैं। वह प्रतिबिम्ब कहाँसे आता है, उसका तो अभी आपको दर्शन ही नहीं। जैसे सूर्यभगवान् हैं, उनकी धूप यहाँ इस मकानमें पड़ती है और वहाँ आईना है, उस आईनेका प्रतिबिम्ब यहाँ आकर पड़ता है। असली चीज तो वह सूर्य है। सूर्यका प्रकाश धूप है और धूपमें पड़े हुए आईनेमें प्रतिबिम्ब पड़ता है। वह प्रतिबिम्ब हम लोगोंकी छायामें यहाँ दीखता है। यहाँ प्रतिबिम्बका आभास पड़ता है। सूर्यका प्रतिबिम्ब तो उस आईनेमें है और सूर्य आकाशमें है और छायामें उसका आभास आता है। वह आभास तो ठहरनेकी चीज नहीं है। उस काँचको घुमा दिया जाय तो उस प्रतिबिम्बका आभास यहाँ नहीं पड़ेगा, क्योंकि वह काँचसे सम्बन्धित है। सूर्य छिप जाय तो फिर आईनेमें कुछ नहीं दीखता। असली सूर्य एक नम्बर चीज है और आईनेके भीतर

जो सूर्य दीखता है, वह उसका प्रतिबिम्ब है, वह दो नम्बरकी चीज है और जो यहाँ उसका चिलका पड़ता है वह तीन नम्बरमें है। यदि अपनेको तीन नम्बरका भी आनन्द आ जाय तो पागल-सा हो जाय, उसके बिना उससे रहा नहीं जाता। सूर्यका जरा-सा चिलका भी आँखोंके ऊपर पड़ जाय तो वह समझता है इतनी रोशनी दुनियाके किसी पदार्थमें नहीं है। सूर्यकी रोशनी जो आँखके ऊपर पड़ी वह आईनेके भीतर दीखनेवाले सूर्यकी रोशनी आँखपर पड़ी। इसी प्रकार परमात्माका जो ध्यान बतलाया गया है उसकी रोशनीकी जगह यहाँ जो आनन्द है, उस आनन्दका जो अनुभव है वह वास्तवमें हृदयमें अंकित हो जाय तो किसीकी सामर्थ्य नहीं कि उसे वह छोड़ सके और उसके बिना एक मिनट भी रह सके। उसे दूसरी वस्तु अच्छी लगे ही नहीं, वह तो रात-दिन ऐसा ही विचार करेगा कि मेरा यह ध्यान बस अटल बना ही रहे। जब यह मुझे ज्ञात हो गया कि ऐसी चीज भी है तो मैं उससे वंचित क्यों रहूँ। चाहे सर्वस्व जाय मैं इससे वंचित क्यों रहूँ। वह इसके लिये इतना आतुर हो जाता है कि फिर बिना मिले रह नहीं सकता। जैसा किसी भक्तने कहा है—

'मैं आशिक तेरे रूप पे बिन मिले सबर नहीं होती।'

'हे प्रभु! मैं आपके रूपपर आसक्त हूँ, आपके बिना मुझे चैन नहीं पड़ता।'

उसकी ऐसी दशा हो जाती है। संसारमें तो ऐसे-ऐसे महापुरुष हैं जिनके द्वारा लाखों, करोड़ों मनुष्योंका उद्धार हो गया, उनकी बात मानकर उसके अनुसार अपना जीवन बना लेना चाहिये। श्रेष्ठ पुरुषके आचरणोंको ग्रहण करना चाहिये। उनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये। केवल आज्ञाका पालन करनेसे भी मनुष्यका कल्याण हो सकता है। उनके आचरणोंका

अनुकरण करनेसे भी मनुष्यका कल्याण हो सकता है और उससे भी बढ़कर पुरुष हुए हैं जो अभी मैंने आपको बतलाया है। जिनका स्मरण करनेसे, ध्यान करनेसे मन स्थिर होकर आत्माका उद्धार हो सके। जिनके वचनोंको मैंने कहा है वे बड़े उच्च कोटिके महर्षि पतंजलि हैं। हमलोगोंको इतनेमें ही संतोष नहीं करना चाहिये। हमलोगोंको तो ऐसा आदर्श, ऐसा महापुरुष बनना चाहिये कि भगवान्‌के घरसे हमलोगोंको वह अधिकार मिल जाय। उस अधिकारके मुकाबलेमें मुक्ति भी कोई चीज नहीं है। मुक्तिमें तो जो मुक्त होता है वह संसारके सारे दुःखोंसे, सारे दुर्गुणोंसे, दुराचारोंसे, क्लेशोंसे और विकारोंसे, दुर्व्यसनोंसे सदाके लिये मुक्त हो जाता है। बदलेमें उसे परम शान्ति और परम आनन्दकी प्राप्ति हो जाती है। किंतु जिसकी बात मैंने कही वैसा बन जाय तो वह इस प्रकार दूसरे लाखों-करोड़ोंको बना देता है तो उसके बराबरका कैसे कहा जा सकता है।

शिवजी महाराज लाखों आदमियोंको मुक्ति देते हैं। मुक्ति पानेवालोंकी अपेक्षा शिवजी महाराज सर्वथा, सब प्रकारसे उच्च कोटिके श्रेष्ठ हैं। वह तो फिर शिवके समान मुक्तिका दाता हो गया। शिवजी महाराज काशीमें मुक्तिका सदाव्रत बाँटते हैं। ऐसा महापुरुष चलता-फिरता सब जगह ही सदाव्रत बाँटता फिरता है।

अब और दूसरी बात कही जाती है। हम मनमें ऐसा भाव करें कि भगवान् हमें ऐसा बना दे कि दूसरोंका कल्याण हमारे द्वारा होता ही रहे। जैसे टकसालमें रुपये बनते ही रहते हैं। एक तो रुपया है और एक रुपयोंकी टकसाल। हम रुपया बनानेवाली टकसाल बननेकी चेष्टा करें, टकसालको लक्ष्यमें रखेंगे तो रुपया तो कम-से-कम बनेंगे ही, यानी अपना लक्ष्य ऐसा रखें कि हमारे द्वारा लोगोंका कल्याण होता रहे।

यदि यहाँतक हम नहीं पहुँचते तो हमारा कल्याण हो जाय। अपना लक्ष्य तो ऊँचा रखना चाहिये। ऊँचा-से-ऊँचा लक्ष्य रखना चाहिये। एक तो मुक्तिका दाता और एक खुद मुक्त होना। एक सदाव्रत बाँटनेवाला और एक सदाव्रत लेनेवाला। सदाव्रत बाँटनेवालेका हम लक्ष्य रखें तो सदाव्रत बाँटनेवाले हो जायँ, इसलिये हमारा लक्ष्य हो सदाव्रत देनेवाला, जिससे हम सदाव्रत बाँटनेवाले बन जायँ। सबको भोजन कराकर भोजन करनेका हमारा लक्ष्य हो तो बहुत ही उत्तम है। स्वयं भोजन कर लेना तो मामूली बात है। अपना लक्ष्य तो यही रखना चाहिये कि अपनेको चाहे भूखा ही रहना पड़े पर सबको भोजन करायें; इसके बाद यदि अवकाश मिले तो बादमें हम भी कर लें। भोजनसे कोई वैर तो है ही नहीं, किंतु इस बातको हम ज्यादा पसंद करें कि सबको भोजन कराना है, चाहे अपने लिये न मिले। यह भाव और भी ज्यादा ऊँचा है। संसारमें भी यह बात प्रसिद्ध है कि एक आदमी तो खुद भोजन करता है और दूसरेको नहीं देता और एक आदमी दूसरोंको भी देता है तथा खुद भी करता है और एक आदमी दूसरेको देता है खुद नहीं करता। इन तीनोंमें उदारताकी दृष्टिसे, त्यागकी दृष्टिसे हम विचार करके देखते हैं तो भोजन करनेवालेकी अपेक्षा वह श्रेष्ठ है जो दूसरोंको भी कराता है और खुद भी भोजन करता है, और इससे भी वह श्रेष्ठ है जो दूसरोंको कराता है और अपने भोजनकी कोई परवाह नहीं करता। अपनेको उत्तम-से-उत्तम पक्षको स्वीकार करना चाहिये। कोई एक धनी आदमी है और उसके यहाँ सदाव्रत बाँटनेवाला कोई एक बहुत अच्छा गुमाश्ता है, वह अपने लिये भोजनकी परवाह नहीं करता और दूसरोंको सदा सदाव्रत बाँटता ही रहता है तो उस गुमाश्तेकी परवाह

उसका मालिक करता है कि वह भूखा है। मालिक उसके पीछे-पीछे फिरता है—कहता है भैया! तुम भी भोजन कर लो।

यहाँ मालिक कौन है? भगवान्! और गुमाश्ता कौन है? भगवान्का भक्त। और सदाव्रत क्या है? मुक्ति। तो जो दूसरोंको मुक्ति सदाव्रतके रूपमें बाँटता है और खुदकी मुक्तिकी परवाह नहीं करता, उसकी परवाह भगवान् करते हैं, फिर हम मुक्तिकी क्यों चिन्ता करें। यह सबसे ऊँचा भाव है। इसलिये अपनी मुक्तिकी चिन्ता न करके संसारमें जो दुःखी आदमी हैं उनका किस प्रकारसे जल्दी-से-जल्दी कल्याण हो इसके लिये विशेष चेष्टा करनी चाहिये। ऐसा जो निष्कामभाव है वह बहुत उच्च कोटिका भाव है।

गोसेवाकी प्रेरणा

आजकल देशमें गोधनका प्रतिदिन ह्रास होता जा रहा है, जिससे गोदुग्ध एवं कई लाभोंके अभावमें हाहाकार मचा हुआ है। शास्त्रत: और लोकत: विचार करके देखें तो यह मालूम होगा कि धनोंमें गोधन एक प्रधान संरक्षणीय धन है। अत: हम सबको अपनी शक्तिके अनुसार अपने गोधनकी सेवा करनी चाहिये। हम सब यदि गौओंकी सेवा न करें तो यह हम सबकी कृतघ्नता है। क्योंकि हम सब गौओंसे जितना लाभ उठाते हैं, उसके बदलेमें उसकी सेवा न करें तो कृतघ्नता ही कही जायगी।

वास्तवमें गौओंकी सेवाके विषयमें कहनेका मैं अधिकारी भी नहीं हूँ। क्योंकि जैसे आपलोग दूध पीते हैं वैसे ही मैं भी दूध पीता हूँ। गोसेवा आप भी नहीं करते और मुझसे भी नहीं बनती। इस कारण भी मैं अधिकारी नहीं हूँ। अच्छे पुरुष, जिन्होंने गौओंकी सेवा की है, उनके द्वारा तथा शास्त्रके द्वारा अपनेको जो शिक्षा मिल रही है, उसको आधार बनाकर हमलोगोंको गौओंकी सेवा करनी चाहिये।

नन्दके यहाँ लाखों गौएँ थीं। विराटके पास करीब एक लाख गायें थीं। दु:खकी बात है कि इस समय गौएँ बहुत काफी मात्रामें मारी जा रही हैं। यह कानून है कि १४ वर्षसे कम आयुकी गौएँ न मारी जायँ, किंतु कानून केवल सरकारी कागजोंमें ही है। यह कानून काममें लानेके लिये नहीं बनाया गया है, केवल लोगोंको दिखानेके लिये बनाया गया है ताकि लोगोंमें उत्तेजना न हो। छोटे-छोटे बछड़े-बछिया भी मारे जाते हैं। क्योंकि उनका चमड़ा मुलायम होता है, बढ़िया होता है। अपने-आप मर जानेवाली गौका चमड़ा कठोर होता है, उनके जूते खराब तथा सस्ते होते हैं और जीवित गौका

या बछड़े-बछियाका चमड़ा उतारा जाय तो वह ज्यादा मुलायम होता है। मुलायम चमड़ेसे बनी हुई टोपी, घड़ी, बैग और जूता आदि महँगे बिकते हैं।

कुछ सज्जन कलकत्ताके कसाईखानेमें गये थे। गौओंकी हत्या किस प्रकार होती है इसके विषयमें उन्होंने बताया कि गौओंके ऊपर गरम खूब खौलता हुआ पानी छिड़का जाता है, जिससे उनका चमड़ा मुलायम हो जाता है। खौलते पानीको छिड़ककर लाठियोंसे उनको मारा जाता है, जिससे चमड़ा फूल जाय और खूब मुलायम हो जाय। इसके बाद उसके जीते ही उसका चमड़ा उतारा जाता है, चमड़ा उतारते हुए वह काँपती, डकारती-छटपटाती, तड़प-तड़पकर मर जाती है। ऐसी भी बात सुनी जाती है कि किसी-किसी कसाईखानेमें तो गायको मार-मारकर उसका चमड़ा उतारा जाता है और किसीमें ऐसा सुना जाता है कि पहले चमड़ा उतार लिया जाता है फिर वह मर जाती है या उसका क़त्ल कर दिया जाता है। उनका कहना है कि चमड़ा पहले इसलिये उतार लिया जाता है, जिससे ज्यादा मुलायम रहे। यह भी बताते हैं कि उस चमड़ेके बने जूते एक नम्बरके होते हैं।

इस पापके भागी छः होते हैं—(१) गायको कसाईके हाथ बिक्री करनेवाले, (२) गायके वधके लिये सलाह-आज्ञा देनेवाले, (३) गायको मारनेवाले, (४) मांस खरीदने या पकानेवाले, (५) गोमांस भक्षण करनेवाले और (६) चमड़ा या अन्य अवयवसे बनी वस्तुओंका उपभोग करनेवाले। ये सभी समानरूपसे पापके भागी होते हैं।

मांसके विषयमें मनुजीने बतलाया है कि हिंसा करनेवाले, उसमें सम्मति देनेवाले, बिक्री करनेवाले, पकानेवाले और खानेवाले—ये सभी समान-भावसे पापके भागी होते हैं। इस

बातको सुनकर आप सबको इसके विरोधमें आजसे ही प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये कि जिन होटलोंमें गौका मांस पकाया जाता है, हम कभी उन होटलोंमें नहीं जायँगे। कुछ लोग कहते हैं कि हम होटलोंमें तो जाते हैं पर मांस नहीं खाते। मांस भले ही न खाओ पर उसका रस दालमें, भातमें परसनेवाली चम्मच आदिके द्वारा पड़ जाता होगा, सारे सामानोंमें चम्मच पड़ती ही होगी, हाथ वही, संसर्ग वही। उसके परमाणु तो आ ही जाते हैं। इसलिये होटलोंमें न जानेकी शपथ लेनी चाहिये। होटलोंमें न जानेसे मर तो जायँगे नहीं, होटलमें गये बिना भी संसारमें बहुत लोग जी रहे हैं, कोई मर नहीं रहे हैं। यह एक मामूली बात है। इसलिये हमलोगोंको यह तो प्रतिज्ञा ही कर लेनी है कि किसी भी होटलमें जाकर हम भोजन नहीं करेंगे। यह भी मामूली बात है, उत्तम बात तो यह है कि बाजारकी कोई चीज न खायी जाय, चाहे खोमचेका हो या मिठाई हो अथवा पान हो या चाय; क्योंकि बाजारकी सभी चीजें अपवित्र होती हैं। उसमें घी अपवित्र, चीनी अपवित्र, जल अपवित्र—सभी अपवित्र। इतना त्याग न हो सके तो कम-से-कम होटलमें खानेका त्याग तो कर ही देना चाहिये।

होटलोंमें खानसामें सभी धर्म-जातिके होते हैं, उसमें कोई जातिका भेद नहीं रहता, वहाँ कोई शुद्धि नहीं रहती, कोई-कोई अंडे, मांस, मदिरा रखते हैं। इनका नाम लेनेसे मनुष्यको पाप लगता है। मैं उनके नामका उच्चारण उनके निषेधके लिये करता हूँ, इसलिये शायद पाप न लगे। इस विषयमें तो सौगन्ध कर ही लेनी चाहिये कि किसी भी होटलमें नहीं जाना है। दूसरी उत्तम बात यह है कि चमड़ेका सामान काममें लाना ही नहीं है, क्योंकि मालूम नहीं होता कि यह चमड़ा अपनेसे मरी गायका है या मारी गयी गायका। मरी हुई गायका चमड़ा उतारा गया

है या चमड़ा उतारकर फिर वह मारी गयी है। चमड़ा चाहे पहले उतारे या हत्या करनेके बाद, दोनोंमें पाप है। चमड़ा उतारकर मारे तो और ज्यादा पाप है। इसलिये चमड़ा काममें नहीं लाना चाहिये। यदि चमड़ा काममें लाते हैं और उसके विषयमें कहा जाता है कि यह 'खादी प्रतिष्ठानका चमड़ा है, मरी हुई गऊका है, अपनी मौतसे मरी हुई गायका चमड़ा है, मारी हुई गऊका नहीं, तो हमारा इतना विरोध नहीं है, उसको काममें लाया जा सकता है, जब आपको पूरी जानकारी हो जाय कि वह चमड़ा अपनेसे मरी हुई ही गायका है, इसकी हिंसा नहीं की गयी है, तब भी यह प्रतिज्ञा जरूर करनी चाहिये कि जो गायें चमड़ेके लिये, मांसके लिये मारी जाती हैं, उन गायोंके चमड़ेका जूता वगैरह काममें नहीं लाऊँगा। गायोंके चमड़ोंके जूतोंका और होटलमें जानेका त्याग कर देना चाहिये। किसी भी होटलमें जाकर खाना या होटलकी चीज मँगाकर खाना आपके जँचे तो एकदम सदाके लिये त्याग देना चाहिये, क्योंकि कितने वर्ष जीओगे, आखिरमें तो मरोगे ही। ऐसे कलंकित होकर संसारसे क्यों जायँ। ऐसा करना अपने कुलमें, जातिमें, देशमें कलंक लगाना है। आप यदि इसे ठीक समझें तो 'परमात्माकी जय' बोलकर इसकी स्वीकृति दें और इसकी प्रतिज्ञा स्वीकार करें।

दूसरी बात यह है कि जिसे आप अपनी यथाशक्ति कर सकते हैं—हम गायका दूध पीते हैं, इसलिये हमें हर एक प्रकारसे गायकी सेवा करनी चाहिये। जहाँ कहीं गोरक्षा-आन्दोलन हो उसमें भाग लेना चाहिये, गायोंकी हिंसा बंद हो जानी चाहिये। कुछ लोग कहते हैं कि यदि गायें कटना बिलकुल बंद हो जायँगी तो बूढ़ी गायोंको घास और चारा कहाँसे मिलेगा। चारा पैदा करनेवाला भगवान् संसारमें मौजूद है, भगवान् कहीं मरा नहीं है। उसके भरोसेपर आप गौओंका पालन करें।

इस विचारसे तो यह भी सवाल पैदा हो सकता है कि जो बूढ़े-बूढ़े आदमी हो गये हैं, उनको मार डालना चाहिये, क्योंकि वे निकम्मे हो गये हैं। वे काम तो कुछ करते नहीं, अन्न खा जाते हैं, जवान आदमीके हिस्सेका अन्न खा जायँगे तो जवान आदमी खाने बिना मरेंगे, बूढ़े आदमीको खिलानेसे कोई जवान मरा है आजतक? सब बेवकूफीकी बात है, बेसमझीकी बात है। इतने जंगल हमारे हिन्दुस्तानमें पड़े हैं, लाखों गायें जंगलोंमें रहकर अपना जीवन-निर्वाह कर सकती हैं, घास खाकर जी सकती हैं, इसलिये उन गायोंको हम जंगलोंमें छोड़ दें तो अपनी पूरी आयु पाकर वे मरेंगी और चरेंगी जंगलमें और दूसरी बात यह है कि उन गायोंको हम खेतोंमें रखकर चरायें तो आप हिसाब लगाकर देखें गऊसे जो गोबर होता है, उससे तथा जो गाय मूत्र करती है उससे खेतीकी उपजमें वृद्धि होती है। गोमूत्रसे खेती अधिक पैदा होती है। एक मन खाद दी जाती है तो उससे कई मन अनाज पैदा होता है। चारा, घास और अन्न सब पैदा होता है। गाय जो कुछ खाती है उसके अनुसार स्वयं खाद पैदा कर देती है, तीसरी बात यह है कि भगवान् स्वाभाविक ही वर्षा करते हैं। संसारमें जितने भी प्राणी हैं, पशु-पक्षी, कीट-पतंग सबके लिये भगवान् सोच-समझकर हिसाब लगाकर वर्षा और अन्न पैदा करते हैं। आवश्यकता होती है तो उससे अधिक भी पैदा करते हैं फिर अपनेको क्या चिन्ता है! आज यदि वर्षा न हो तो क्या जलसे खेती करके हम जी सकते हैं। संसारमें जो कुछ काम हो रहा है सब भगवान्‌की नजरमें हो रहा है, ऐसा सोचकर भगवान्‌पर इतना तो भरोसा करना ही चाहिये कि जो पैदा करता है वही जिलाता है और समयपर उसे समाप्त करता है। हम बीचमें पड़कर उसकी पंचायत क्यों करें। इसलिये हर एक प्रकार हमें गऊकी रक्षा करनी चाहिये। इसमें हमलोगोंको

केवल निमित्त बनना है, करनेवाले तो सब भगवान् हैं, मेरा किया होता क्या है? भगवान् अर्जुनसे गीतामें कहते हैं कि 'हे सव्यसाची अर्जुन! तू निमित्तमात्र हो जा, क्योंकि बहुत-से योद्धा तो मेरे द्वारा पहलेसे ही मारे हुए हैं, तू नहीं भी मारेगा तो भी सब मरेंगे, मैं तुम्हें केवल निमित्त बनाता हूँ।'

'निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्॥'
'ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे।'

भगवान् हमलोगोंको केवल निमित्त बनाते हैं। करनेवाले सब भगवान् हैं। इतना निमित्त बन जाना चाहिये कि गौओंके लिये कोई भी सवाल उठे तो एक स्वरसे सबके साथ शामिल हो जाना चाहिये। हिन्दुस्तानमें गौओंका वध नहीं होना चाहिये। महात्मा गाँधीने जब स्वराज्य नहीं मिला था, उस समय यह घोषणा की थी कि 'हिन्दुस्तानमें गोहत्या बंद होनी चाहिये' मेरी यही इच्छा है। मैं स्वराज्यके लिये चेष्टा करता हूँ तो मेरा प्रधान सवाल गायोंके लिये ही है। स्वराज्य अपने हाथमें आ जाय, उसके बाद मेरी यह इच्छा है कि 'मैं गोहत्याको बंद कर दूँगा।' सम्भव है आज वे यदि जीवित होते तो शायद अपनी कही हुई बात याद करके गोहत्या बंद करते। वे तो हैं नहीं, अब किसे कहें। हिन्दुस्तानमें स्वराज्य पानेका उनका आदेश और उद्देश्य दोनों था, स्वराज्य तो मिल गया, उसकी सिद्धि करनेके लिये हमलोगोंको चेष्टा करनी चाहिये, हमारे देशमें गायोंका कटना एकदम बंद हो जाय इसके लिये बहुत-से उपाय हैं। पहले तो गायोंकी वृद्धिका उपाय करना चाहिये और गोहत्या बंद होनी चाहिये।

भगवान् रामके वनवासकालमें राक्षस मनुष्योंको मारकर उनका मांस खा जाते, मनुष्योंकी हड्डियोंको देखकर भगवान् रामकी आँखोंमें आँसू आ गये और उन्होंने भुजा उठाकर यह

प्रतिज्ञा की कि पृथ्वीको राक्षसोंसे हीन कर दूँगा और सब आश्रमोंमें जा-जाकर उन्होंने मुनियोंको सुख दिया था।

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्हके आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥

उस समय ऋषि-मुनियोंको राक्षसलोग खा जाया करते थे और आजकलके मनुष्य ही राक्षस हैं, वे गायोंको खाकर चारों ओर हड्डियोंकी ढेरी लगा रहे हैं। संसारमें जब ज्यादा अत्याचार होता है तब भगवान् अवतार लेते हैं अथवा बहुत-से भक्तोंमें वे प्रेरणा करते हैं भक्त काम कर लेते हैं तो भगवान्‌को आना नहीं पड़ता। इसलिये हमलोग ही भगवान्‌के भक्त बनकर अगर इस कामको करना चाहें तो भगवान्‌की मदद पाकर हमलोग भी कर सकते हैं, जैसे अर्जुनने भगवान्‌की मदद पाकर युद्धमें असाधारण वीरोंको भी मार डाला। इसी प्रकार काम तो करनेवाले भगवान् हैं, हमलोग तो केवल निमित्तमात्र ही बनते हैं। अतः कम-से-कम निमित्तमात्र तो बनना ही चाहिये। हर एक भाइयोंको अपनी जैसी-जितनी शक्ति हो उसके अनुसार गोचरभूमि छोड़नी चाहिये। जिसकी यह शक्ति न हो तो घरमें एक-दो गाय रखनी चाहिये। यदि इतनी भी शक्ति न हो तो यही प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हम गऊका ही दूध पीयेंगे, भैंसका नहीं पीयेंगे। इससे भी गायोंको मदद मिलेगी और जैसे भी हो किसी प्रकारसे भी गायोंकी सर्वथा-सर्वदा मदद करनी चाहिये। गोचरभूमि छोड़ना भी बड़ी भारी सेवा है। गायोंको घरमें रखकर उनकी सेवा करना तो एक नम्बर है ही, हर एक प्रकारसे हमको गायोंकी सेवा करनी है। जैसे गऊशाला है, इसमें अपनी शक्तिके अनुसार सभी भाई लोग मदद करते ही हैं, उसमें और विशेष मदद करनी चाहिये। आजकल ब्राह्मणोंको जो गऊदान किया जाता है वह दान देना तो बहुत उत्तम है ही, किंतु यदि कोई ब्राह्मण गऊ

लेकर उसका पालन नहीं कर सके और बिक्री कर दे या किसी भी प्रकारसे वह कसाईके हाथमें चली जाय तो वह ब्राह्मण भी नरकमें जायगा और गोदान करनेवाला भी। इसलिये ब्राह्मण उसे अपने घरमें रखकर उसका पालन करें। गऊदानकी महिमा शास्त्रोंमें भरी पड़ी है। ऐसी परिस्थितिमें आजकलके समयमें यदि किसीको गऊ देना हो तो गऊशालामें भेज दे। गौशालामें गऊके दूधका अधिक दाम देना भी गऊकी सेवा है। आजकल बहुत-सी गऊशालाएँ चंदेसे ही चल रही हैं। एक महात्मा बहुत उच्च कोटिके थे, उनका नाम था मंगलनाथजी। उनके नामसे ऋषिकेशमें एक गऊशाला है। हम सभी उसके मेम्बर हैं, ताकि किसी भी प्रकार गऊशाला कायम रहे। उसमें तीन-चार हजार रुपया यहाँसे सहायता मिल जाती है, वह वर्षोंसे इसी प्रकार चल रही है। उससे गायोंकी सेवा हो रही है और अपनेको दूध मिल रहा है। नहीं तो इकट्ठा इतना दूध कहाँ मिलता। कलकत्तेमें जो भाई लोग रहते हैं, उनको कलकत्तेमें पिंजरापोल गऊशालाकी सेवा करनी चाहिये। प्राय: सभी जगह गऊशाला है ही, उसकी सेवा करना भी गऊकी सेवा है। हर एक प्रकारसे दूधकी वृद्धि करनी चाहिये। जो ठाली (ठाठ) गऊ है, वृद्ध गऊ है उसकी भी सेवा करनी चाहिये। कुछ भाई तो कहते हैं कि गऊशालामें जो ठाली, बुड्ढी या निकम्मी गौ है उसकी सेवा करनी चाहिये, उनकी वृद्धि करनी चाहिये, दूधवाली गऊ बेच देनी चाहिये। दूसरोंको दे देनी चाहिये, उसकी वृद्धि रोक देनी चाहिये। कितने कहते हैं कि अपने सभी लोगोंको दोनों प्रकारकी गउओंकी सेवा करनी चाहिये। कितने कहते हैं कि नया डेयरी-फार्म खोलना चाहिये, दूधवाली गउओंकी सेवा करनी चाहिये, ठाली गऊ अगर मरे तो मर जाय।

इन बातोंमें मुझे तो यह बात अच्छी मालूम देती है कि सभी

गौओंकी सेवा करनी चाहिये, चाहे जवान हो चाहे बूढ़ी हो। जवानकी सेवा दूधके लिये करनी चाहिये और बुड्ढीकी सेवा धर्मके लिये करनी चाहिये। अपने घरमें जितने मनुष्य होते हैं कोई बूढ़े और कोई जवान होते हैं, सबकी सेवा करना अपना कर्तव्य है। बूढ़ोंकी सेवा इसलिये कि उन्होंने हमारी सेवा की है, वे हमारी सेवा करते-करते बूढ़े हो गये। आजकल लोग कहते हैं कि 'बूढ़े जल्दी-से-जल्दी मर जायँ' यह हमारी भावना, हमारी बुरी नीयत है। हमको तो यह भाव रखना चाहिये कि 'हमारे बूढ़े माता-पिता सौ वर्षोंतक जीयें।' हमारी भावना करनेसे तो वे सौ वर्षतक जीयेंगे नहीं। हम कह दें कि कल ही मर जायँ तो मरेंगे नहीं। अपनी इच्छासे न तो कोई जीयेगा और न कोई मरेगा। उनके मरनेकी इच्छा करके हमने अपराध कर लिया। स्वयं अपराध क्यों करें, हमें तो बढ़िया-से-बढ़िया इच्छा रखनी चाहिये। सब गौओंकी सेवा होनी चाहिये, जीवमात्रकी सेवा होनी चाहिये।

राजा दिलीपने गऊकी सेवा करके रघुको प्राप्त किया। जिनके नामसे संसारमें रघुवंश प्रसिद्ध है। जिनके वंशमें भगवान्‌ने अवतार लिया।

राजा दिलीप गऊकी सेवा कैसे करते थे—गऊ बैठती है तो बैठते थे, उठती तो उठते थे, साथमें चलते थे, गऊको घास खिलाकर खुद अन्न खाते थे, गऊको जल पिलाकर जल पीते थे, गऊ उनके लिये ईश्वरके तुल्य हो गयी थी। जैसे कोई ईश्वरकी सेवा करे ऐसे गऊकी सेवा कर रहे थे। आखिरमें एक दिन ऐसा हुआ कि वनमें गऊके ऊपर सिंह आकर झपटा, गऊ चिल्लायी, राजा दौड़कर गये, देखा तो सिंह गऊके ऊपर आक्रमण कर रहा है। राजाने उस सिंहको मारनेके लिये धनुष-बाण उठाया, किंतु राजाका धनुष-बाण कुछ भी काम नहीं दिया,

राजाने सोचा बाण नहीं चला क्या बात है? फिर सिंहने कहा कि 'मैं शिवजीका गण हूँ, मुझे कोई नहीं मार सकता।' राजाने कहा कि 'महाराज! आप इस गऊको न मारकर मुझे मारें। आपको तो मांस ही चाहिये न? आप मुझे खा लें गऊको छोड़ दें।' उसने कहा—'राजन्! तुम राजा होकर गऊके बदले अपनेको क्यों दे रहे हो? वसिष्ठको ऐसी-ऐसी कई गऊ आप दे सकते हैं। सोचें आप राजा हैं, आपके शरीरका कितना मूल्य है और इस गऊका कितना मूल्य है?' दिलीपने कहा कि 'आपका कहना ठीक है, किंतु गौकी रक्षा करना मेरा धर्म है, उसे बचाना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। अपने प्राणोंको देकर भी गऊको बचाना चाहिये।' सिंह बोला—'ठीक है, तुम यदि इस प्रकार धर्मका पालन करते हो तो तुम सावधान हो जाओ। गऊको छोड़कर मैं तुम्हारे ऊपर आता हूँ।' यह कहकर जब सिंह झपटनेकी तैयारी करने लगा, तब राजा भगवान्के ध्यानमें मस्त हो गये। पर सिंह झपटता नहीं है। राजाने आँख खोलकर देखा कि सामने सिंह नहीं है, केवल गाय खड़ी है। गायने कहा—'राजा दिलीप! मैं ही सिंह बनकर तुम्हारी परीक्षा ले रही थी, मैं तुम्हारे ऊपर खुश हो गयी, तेरी इच्छा पूर्ण हो जायगी, तुम्हारे बहुत बलवान् लड़का पैदा होगा जो संसारमें विख्यात होगा।'

इस दृष्टान्तपर आप सब ध्यान दें—राजा दिलीपने गऊके लिये अपने प्राणोंकी आहुति दे दी थी। ऐसी बहुत-सी कथाएँ पुराणोंमें, शास्त्रोंमें आती हैं। यह सोच-समझकर सभीको गोसेवा एवं गोरक्षाका व्रत लेना चाहिये।

भगवान्‌के निराकार स्वरूपका वर्णन

भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा—अर्जुन! मैं तुझे विज्ञानके सहित ज्ञानकी बात कहूँगा, जिससे तू संसारसे मुक्त हो जायगा। फिर इसकी प्रशंसा करते हैं—यह सब विद्याओंका राजा होनेसे राजविद्या है तथा सबसे गोपनीय होनेसे राजगुह्य है और परम पवित्र है तथा सबसे उत्तम है। इसका फल भी प्रत्यक्ष और धर्ममय है। यह साधनमें भी सुगम और अविनाशी है। इस प्रकारसे विशेषण देकर निराकारका ध्यान बतलाते हैं।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥
न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः॥

(गीता ९।४-५)

मेरे निराकार स्वरूपसे संसार परिपूर्ण हो रहा है, जैसे आकाशमें बादल आकाशसे परिपूर्ण है। उसके बाहर-भीतर, ऊपर-नीचे आकाश परिपूर्ण है। आकाश व्यापक है, बादलमें परिपूर्ण है। इसी प्रकार इस संसारमें मैं परिपूर्ण हूँ। यानी संसार तो बादलके जैसा है और मैं उसमें आकाश-जैसा हूँ। फिर कहते हैं कि '**मत्स्थानि सर्वभूतानि**'—सारे मनुष्य—प्राणी मेरेमें स्थित हैं। जैसे आकाशमें सारे बादल स्थित हैं, वैसे सारे भूत-प्राणी मुझ परमात्मामें स्थित हैं। फिर इसके विपरीत कहते हैं कि उन भूतोंमें मैं नहीं हूँ। पहले तो कहते हैं कि उन भूतोंमें मैं व्यापक हूँ और आगे जाकर कहते हैं कि उन भूतोंमें मैं नहीं हूँ—'**न च मत्स्थानि भूतानि।**' सब भूत-प्राणी मेरेमें स्थित हों ऐसी बात भी नहीं। '**मत्स्थानि सर्वभूतानि**' और '**न च मत्स्थानि भूतानि**' सारे भूत-प्राणी मेरेमें स्थित हैं और सारे भूत-प्राणी मेरेमें स्थित नहीं

हैं। '**पश्य मे योगमैश्वरम्**' मेरे योगका अद्‌भुत—अलौकिक ऐश्वर्य देख। '**भूतभृन्न च भूतस्थो**' भूतोंको धारण करनेवाला मेरा स्वरूप है, किंतु भूतोंमें नहीं है। '**ममात्मा भूतभावनः**' मेरी आत्मा या स्वरूप भूतोंके भावको उत्पन्न करनेवाला है। यह इसका शाब्दिक अर्थ है। इसका भाव तत्त्व, रहस्य समझना चाहिये। यदि वास्तवमें इसका तत्त्व समझमें आ जाय तो उसके कल्याण होनेमें विशेष विलम्ब नहीं है। यहाँपर यह विचार करना है कि यहाँका कथन किस दृष्टिसे है। व्याप्य-व्यापकभावकी दृष्टिसे है या आधार-आधेयकी दृष्टिसे है अथवा कार्य-कारणकी दृष्टिसे है। इसका उत्तर यह है कि सभी दृष्टिसे भगवान्‌का कथन है—भगवान् इस संसारमें व्यापक हैं। संसार व्याप्य है, भगवान् उसमें व्यापक हैं। भगवान् आधार हैं और संसार उसमें आधेय है तथा भगवान् इसके कारण हैं और संसार इसका कार्य है। भगवान् संसारके उपादान-कारण भी हैं और निमित्त-कारण भी। '**मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना**'—इसमें तो व्याप्य-व्यापकका भाव दिखलाया है, कहा है कि संसार तो व्याप्य है और मैं उसमें व्यापक हूँ। जैसे उपनिषदोंमें—'**ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्**'—जगत्‌में ईश्वर व्यापक है। ईश्वर परिपूर्ण है, ईश्वरद्वारा आच्छादित है। नीचे-ऊपर, बाहर-भीतर सब जगह ईश्वर ही उसमें ओतप्रोत है। इसी प्रकार यहाँ यह कहना है कि संसार व्याप्य है और भगवान् उसमें व्यापक हैं, परिपूर्ण हैं। नीचे-ऊपर सब जगह भगवान्-ही-भगवान् हैं। यहाँ आधे श्लोकमें व्याप्य-व्यापक-भाव दिखलाया कि भगवान् व्यापक हैं और संसार व्याप्य है। जैसे बादल व्याप्य और आकाश उसमें व्यापक है, और '**मत्स्थानि सर्वभूतानि**'—इसमें यह बात दिखलाते हैं कि मैं सारे भूतोंका आधार हूँ और सारे भूत मुझमें आधेय हैं। जैसे आकाश बादलोंका आधार है

और बादल आधेय है। '**ममात्मा भूतभावनः**'—मेरा स्वरूप भूतोंके भावको उत्पन्न करनेवाला है। इसमें यह बात दिखायी कि भगवान् इसके उपादान-कारण हैं। जैसे सारे बादल आकाशसे उत्पन्न होते हैं और आकाशमें ही विलीन हो जाते हैं, वैसे ही ये प्राणी मुझ परमात्मासे उत्पन्न होते हैं। आकाशसे वायु उत्पन्न होती है, वायुसे तेज और तेजसे बादल उत्पन्न होते हैं। आकाश ही इनका मूल उपादान-कारण है। इसी प्रकार भगवान् कहते हैं कि इस संसारका उपादान-कारण मैं ही हूँ, क्योंकि यह सारा संसार मुझसे ही विस्तारको प्राप्त होता है। जब यह सारा संसार भगवान्का संकल्प है तो यह भगवान्का स्वरूप ही है। '**पश्य मे योगमैश्वरम्**'—मेरी योग-शक्तिको तू देख, मेरी रचना देख। रचना करनेवाले भी भगवान् हैं, इसलिये निमित्त-कारण भी भगवान् ही हुए। ये बातें आपको आकाश और बादलके दृष्टान्तसे समझनी चाहिये।

बादलोंकी जगह तो यहाँ संसार है और आकाशकी जगह भगवान्। भगवान् आकाशकी तरह निराकार हैं, आकाशसे भी विशेष हैं; क्योंकि आकाश तो जड है और भगवान् चेतन हैं। अतः यह समझना चाहिये कि बादलोंमें जैसे आकाश व्यापक है, यों ही भगवान् सारे संसारमें व्यापक हैं। बादलोंके लिये आधार आकाश ही है, नहीं तो बादलोंकी कोई गुंजाइश ही नहीं। उसी प्रकार संसारके आधार भगवान् हैं और भगवान्के बिना संसारकी गुंजाइश ही नहीं और आकाश ही बादलोंका उत्पादक भी है और कारण भी। इसी प्रकार भगवान् भी संसारके उत्पादक होनेसे कारण हैं। आकाश जड है और भगवान् चेतन हैं, इसलिये भगवान् उपादान-कारण भी हैं और निमित्तकारण भी, रचनेवाले भी हैं। इतना ही नहीं, भगवान् इसका धारण, पालन-पोषण करनेवाले हैं। '**भूतभृत्**' शब्दसे यह बात प्रत्यक्ष होती है।

अब यह बतलाया जाता है कि भूतोंमें मैं स्थित नहीं हूँ और भूत भी मेरेमें स्थित नहीं हैं तथा भूतोंमें मैं हूँ और मेरेमें सारे भूत हैं यह बात कैसे? इसके लिये उत्तर है—जैसे आकाशके अंदर बादलोंका समूह है, लाखों बादल आकाशके एक अंशमें हैं और आकाश उन बादलोंमें अनुस्यूत है, यह तो प्रत्यक्ष देखते हैं। इसी प्रकार यह ब्रह्माण्ड एक नहीं अनेक ब्रह्माण्ड हैं, सारे-के-सारे ब्रह्माण्ड उस परमात्माके अंदर हैं। जैसे बादलोंका समूह आकाशके अंदर है। सारे ब्रह्माण्ड—अनन्त ब्रह्माण्ड उस परमात्माके निराकार रूपमें स्थित हैं और वह निराकार परमात्मा सभी ब्रह्माण्डोंमें है या सारे ब्रह्माण्डमें अनुस्यूत है—व्यापक है, जैसे बादलोंमें आकाश। आकाश बादलोंके भीतर भी है और बाहर भी। परमात्मा इस ब्रह्माण्डके भीतर भी हैं और इस ब्रह्माण्डके बाहर भी। जिस प्रकारसे आकाशमें बादल उत्पन्न होता है और विलीन हो जाता है, उसी प्रकारसे यह संसार परमात्मासे उत्पन्न होता है और उसीमें लय हो जाता है। यह समझना चाहिये कि बादलोंके समूहकी भाँति यह दृश्यवर्ग संसार है, क्योंकि यह संसार निराकार परमात्माका स्वरूप है। जैसे आकाश निराकार और भगवान् भी निराकार, आकाश भी अक्रिय और भगवान् भी अक्रिय, आकाशका स्वरूप अनन्त तथा भगवान्का स्वरूप भी अनन्त, जैसे आकाश निर्विकार और भगवान् भी निर्विकार। किंतु कई बातें ऐसी हैं जो भगवान्में हैं और आकाशमें नहीं हैं। भगवान् अचिन्त्य हैं, भगवान् किसीका विषय नहीं हो सकते। पर आकाशका हम चिन्तन कर सकते हैं। जो भी वस्तु किसीका विषय हो जाती है वह जड समझी जाती है। ज्ञाता चेतन समझा जाता है और ज्ञेय जड। जाननेवाला परमात्मा है और जाननेमें आनेवाले पदार्थ जड हैं। अतः आकाश जड है और परमात्मा चेतन। इसलिये आकाश अचिन्त्य नहीं है, किंतु भगवान्

अचिन्त्य, अलक्ष्य, अनिर्देश्य हैं; किंतु आकाशमें ये बातें नहीं हैं, आकाशका निर्देश किया जाता है। हम कह सकते हैं कि यह जो फैला हुआ है यह आकाश है; किंतु इस प्रकार भगवान्‌को हम नहीं कह सकते कि यह जो फैला हुआ है यह भगवान् है। आकाशको हम अपनी बुद्धिसे लक्ष्य भी कर सकते हैं, किंतु परमात्माको हम लक्ष्य भी नहीं कर सकते। इसलिये परमात्मा अनिर्देश्य है, अलक्ष्य है, अव्यक्त है, चिन्मय है और अचिन्त्य है। आकाश अचिन्त्य नहीं है। आकाशकी अपेक्षा बहुत-सी बातें उसमें विशेष हैं; किंतु जितनी बातें आकाशमें घट सकें उतनी बातें तो भगवान्‌में घटती ही हैं। उससे जो अधिक घटती है वह बात विशेष है।

जब भगवान् कहते हैं कि 'सारे संसारमें मैं हूँ, सारे ब्रह्माण्डमें मैं हूँ, सारे भूतोंमें मैं हूँ और सारे भूत मेरेमें हैं।' यह तो समझमें आ गयी, किंतु यह समझमें नहीं आया कि सारे भूत मेरेमें नहीं हैं और सारे भूतोंमें मैं नहीं हूँ—ये दो विपरीत बातें समझमें नहीं आयीं।

आकाशके दृष्टान्तसे सारे भूत-प्राणियोंमें मैं हूँ और सारे भूत-प्राणी मेरेमें हैं, यह बात तो समझमें आ गयी, परंतु भूतोंमें मैं नहीं हूँ और भूत भी मेरेमें नहीं हैं इतना अंश समझमें नहीं आया। यह समझाया जाता है, ध्यान दें।

आकाश जड है, किंतु थोड़े कालके लिये उसको चेतन मान लो। यदि आकाश यह कहे कि सारे भूतोंमें मैं हूँ और सारे भूतोंमें मैं नहीं हूँ तो आकाशका यह कहना सही है कि सारे भूतोंमें—सारे बादलोंमें, वायुमें, जलमें और पृथ्वीमें—इन चारों भूतोंमें आकाश कायम होनेसे उन सबमें व्यापक है, किंतु आकाशमें ये नहीं हैं। यदि यह बात समझमें नहीं आयी तो इस प्रकार समझिये—जिस समय बादल आकाशमें नहीं या बादलकी

उत्पत्तिके पूर्व केवल आकाश ही था और बादल जब मिट जाते हैं, तब केवल आकाश ही रहता है और बीचकी अवस्थामें आकाश बादलमें है। यदि कहो कि यही सत्य है तो ऐसी बात नहीं है बल्कि आदिमें भी आकाश अपनेमें स्थित था और अन्तमें भी। इसलिये बीचकी अवस्थामें भी आकाश वास्तवमें अपने-आपमें स्थित है, बादलोंमें स्थित नहीं है। यदि बादलोंमें स्थित होता तो बादलोंके नाश होनेसे उतने आकाशका भी नाश हो जाता। आकाश तो कायम रहता है और बादल उत्पन्न होते हैं और विनष्ट होते हैं। बादल जब नहीं था तब भी आकाश था और बादल जब नहीं रहेगा तब भी आकाश रहेगा। इसी प्रकार महाप्रलयके समयमें यदि संसार नहीं है तो उस समय भगवान् अपने-आपमें स्थित हैं। सृष्टिके आदिमें भी भगवान् थे और सृष्टिके अन्तमें भी भगवान् अपने-आपमें रहेंगे। अतः बीचकी अवस्थामें या सृष्टिकालमें भी भगवान् यानी परमात्मा अपने-आपमें स्थित हैं। इसलिये यह कहना ठीक है कि जिस समय संसार है उस समय संसारमें परमात्मा है और परमात्माके एक अंशमें संसार है। और जिस समय प्रलय हो जाता है उस समयमें संसार नहीं है। इसी प्रकार जब बादल मिट जाते हैं तब आकाशमें बादल नहीं हैं। वास्तविक बात यह है कि परमात्मा अपने-आपमें नित्य स्थित हैं। जैसे आकाश अपने-आपमें नित्य स्थित है, आकाशमें बादल होते हैं, गरजते हैं, बरसते हैं, बिजली चमकती है,शब्द होता है, किंतु थोड़ी देरमें सब समाप्त हो जाते हैं। आकाश उनसे कभी लिपायमान नहीं होता। आकाश तो ज्यों-का-त्यों ही रहता है। इसी प्रकार ब्रह्ममें सृष्टि होती है मरते हैं, जन्म लेते हैं, नाना प्रकारकी क्रिया होती है, परंतु परमात्मा आकाशकी तरह सदैव निर्लेप रहते हैं। यह बात समझमें आ गयी होगी कि जिस समयमें सृष्टि है उस समय सृष्टिमें परमात्मा

व्यापक है और जिस समय सृष्टि नहीं है उस समय परमात्मा अपने-आपमें स्थित है, किंतु गम्भीरतासे सोचनेपर पता लगता है कि आकाशके माफिक बादलोंकी उत्पत्तिके पहले भी आकाश अपने-आपमें स्थित था और बादल शान्त होनेके बाद भी आकाश अपने-आपमें स्थित है। अतः यह समझना चाहिये कि बादलके कालमें भी आकाश अपने-आपमें स्थित है बादलमें नहीं। इसी प्रकार परमात्मा अपने स्वरूपमें सदा स्थित है। संसारकी उत्पत्ति होनेके पहले भी परमात्मा थे, संसारका नाश होनेके बाद भी परमात्मा अपने-आपमें रहते हैं। अतः सृष्टिमें भी परमात्मा अपने-आपमें स्थित हैं सृष्टिमें नहीं,यदि सृष्टिमें होते तो सृष्टिका नाश होनेसे उतने हिस्सेके परमात्माका भी नाश हो जाता। जैसे बादलोंके नाश होनेसे आकाशके उतने हिस्सेका नाश हो जाता; किंतु आकाश तो कायम रहता है। यदि कहो कि यह बात भी समझमें आ गयी, लेकिन यह बात समझमें नहीं आयी कि यह संसार परमात्मामें नहीं है। यह बात भी ठीक है। यदि संसार परमात्मामें होता, यह बात सच्ची होती तो अपने रूपमें सदा कायम रहता। किंतु संसार सदा कायम तो रहता नहीं। '**नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः**' (गीता २। १६)—सत्य वस्तुका कभी अभाव नहीं होता और मिथ्या वस्तु कभी कायम नहीं रहती। यह संसार इस रूपमें कायम नहीं रहता है। इसलिये यह संसार परमात्मामें नहीं है। आकाशमें बादल सदा कायम नहीं रहता, कभी है कभी नहीं है। जिस समय यह संसार परमात्मामें विलीन हो जाता है या मनुष्यको ब्रह्मका ज्ञान हो जाता है फिर उनकी दृष्टिमें यह सृष्टि नहीं रहती। उनकी दृष्टि असली दृष्टि है। मूर्खोंकी, अज्ञानियोंकी दृष्टिका कोई मूल्य नहीं है। ज्ञानकी दृष्टिमें, अद्वैतवादकी दृष्टिमें संसारका अत्यन्त अभाव सदा ही है। यह संसार न हुआ, न है और न

रहेगा। अजातवादकी दृष्टिमें यह संसार कभी जन्मा ही नहीं। वर्तमानमें भी नहीं है और भविष्यमें भी नहीं रहेगा। यदि कहो कि प्रतीति हो रही है तो प्रतीति तो ऐसे हुआ करती है जैसे आकाशमें नेत्रोंके दोषसे तिरमिरे (जाले) प्रतीत होते हैं, किन्तु क्या वे तिरमिरे हैं? हैं ही नहीं, वहाँ तो आकाश है, शुद्ध आकाश है। किंतु परमात्माका स्वरूप अलक्ष्य है, अनिर्दिष्ट है, अचिन्त्य है फिर हम उसका ध्यान कैसे करेंगे। ध्यान जब किया जाता है तो उसके साथमें उनके दिव्य गुणोंको शामिल करके ही किया जाता है। बुद्धिकी वृत्ति ज्ञान है और ज्ञानके आश्रित गुणोंसे सम्पन्न भगवान्‌के स्वरूपको सगुण कहते हैं। उस सगुणके दो भेद होते हैं—एक साकार और दूसरा निराकार। प्रकरण निराकारका है। गुण भी निराकार ही होते हैं। गुणोंसे सम्पन्न भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान होता है। वह है तो निराकार, किंतु दिव्य गुणोंसे पूर्ण है, उसका ध्यान होता है। दिव्य गुण क्या हैं? सत्, चित्, आनन्द यह उनका स्वरूप है। किंतु जिस समय हम इसे बुद्धिसे समझते हैं तो निराकार होते हुए, निर्गुण होते हुए भी उनको हम किसी आकृतिमें देखते हैं। आकृति मायिक होती है, इसलिये परमात्माका स्वरूप माया-विशिष्ट है, मायासे मिले हुए परमात्माके स्वरूपका ही ध्यान होता है, नहीं तो ध्यान नहीं हो सकता। ऐसे समझें कि परमात्मा है और वह चेतन है। भगवान्‌ने गीतामें बतलाया है—

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

(गीता ८। २१)

परमात्माका स्वरूप यहाँ बतलाया है कि परमात्मा अव्यक्त हैं, निराकार हैं, अक्षर हैं उनका क्षय नहीं होता है उसीको परम गतिके नामसे कहा गया है।

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥

(गीता १२।३)

—इस श्लोकमें भगवान् आनन्दमय परमात्माके विषयमें कहते हैं, सारे शब्द अस्तित्वके वाचक हैं, वह अक्षर है, उसका क्षय नहीं होता, वह घटता नहीं। उसका अँगुलीसे निर्देश नहीं किया जा सकता कि वह परमात्मा है। अँगुलीसे आकाशका निर्देश किया जा सकता है, परंतु परमात्माका निर्देश नहीं किया जा सकता इसलिये अनिर्देश्य है। अव्यक्त है माने निराकार है, उसका कोई आकार नहीं। वह अचिन्त्य है यानी मनसे उसका ध्यान नहीं होता। क्योंकि परमात्मा मनका विषय नहीं। चित्त उसका चिन्तन नहीं कर सकता और आकाशकी तरह सब जगह व्यापक है इसलिये सर्वव्यापी है। कोई ऐसा स्थान नहीं जहाँ परमात्मा न हो और कूटकी भाँति स्थित है, अचल है, चलनेकी, हिलनेकी क्रिया नहीं, कोई क्रिया नहीं और भावरूप है, ध्रुव सत्य है, वह परमात्मा वास्तवमें है। ये सत्ताके वाचक शब्द हैं। इसी प्रकारसे जो भगवान्‌का स्वरूप जाननेमें आ सके उसे माया-विशिष्ट कहते हैं, बुद्धि-विशिष्ट कहते हैं, उसीकी व्याख्या गीताके तेरहवें अध्यायमें बारहवें श्लोकसे लेकर सत्रहवें श्लोकतक की गयी है। वहाँ भगवान् कहते हैं कि—

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते॥

हे अर्जुन! जो ज्ञानमें आनेवाला है जाननेयोग्य ब्रह्मका स्वरूप है, जाना जा सकता है, ऐसे ब्रह्मके स्वरूपकी मैं तेरे प्रति व्याख्या करूँगा, उसको समझकर तू अमृतको प्राप्त हो जायगा यानी उस ब्रह्मको प्राप्त हो जायगा, परमात्माको प्राप्त हो जायगा, मुक्त हो जायगा। साधनकालमें जो साधक ब्रह्मका स्वरूप

निराकार होते हुए भी, निर्गुण होते हुए भी उस निराकाररूपमें उसकी उपासना करेगा, उसके फलस्वरूप वह असली परमात्माके स्वरूपको प्राप्त हो जायगा।

वह परमात्मा अनादि और परब्रह्म है। उसको सत् भी नहीं कहा जा सकता और असत् भी नहीं कहा जा सकता। असत् इसलिये नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह ध्रुव सत्य है।

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥

(गीता १३।१७)

सारी ज्योतियाँ परमात्मासे ही हैं। संसारमें जितनी भी ज्योतियाँ हैं, परमात्मा उन ज्योतियोंका भी ज्योति है—उन सबका प्रकाशक है। जितनी भी जड ज्योतियाँ हैं, उन सबका वह प्रकाशक है। ज्योतियोंके भीतर जो चमत्कारी दृष्टि है वह परमात्मासे ही है। क्योंकि—

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥

(गीता १५।१२)

सारे विश्वको, सारे भूमण्डलको प्रकाश देनेवाले सूर्य, चन्द्रमा और अग्निमें जो तेज है यानी ज्योति है वह सब मेरेसे ही है। सूर्य, चन्द्रमा, तारे, नक्षत्रमण्डल, बिजली, अग्नि—ये जितनी जड ज्योतियाँ हैं ये सब भगवान्से ही हैं। इसलिये वह ज्योतियोंकी ज्योति है। इन जड ज्योतियोंसे परेकी चीज जिनसे पदार्थोंका ज्ञान हो वे ज्योतियाँ हैं। नेत्रसे रूपका ज्ञान होता है, कानसे शब्दोंका ज्ञान होता है, त्वचासे स्पर्शका ज्ञान होता है। जिह्वासे स्वादका ज्ञान होता है, नासिकासे गन्धका ज्ञान होता है, अतः ये सब ज्योतियाँ हैं, इनसे इन सबका ज्ञान होता है; उदाहरण देकर बतलाया जाता है—

कोई भाई मुझसे मिलने आया, उसने मुझे देख लिया और मैंने उसे देख लिया। वहाँ नेत्र-ज्योति है। हम दोनों यदि अंधे होते तो एक-दूसरेको नहीं देख सकते। एक-दूसरेको देखकर जो ज्ञान हुआ वह नहीं होता। जहाँ नेत्र-ज्योति नहीं है वहाँ शब्द ज्योति है। जैसे मैं किसी भाईको पूछता हूँ कि क्या शरणानन्दजी महाराज बैठे हुए हैं, उसने कहा—हाँ। दोनों आदमी अंधे होते हुए भी शब्दके बलपर उन्हें एक-दूसरेका ज्ञान हो जाता है—और उनसे जाकर मिल लेते हैं। पास-पास बैठकर बातचीत कर लेते हैं। दोनों ही अंधे आदमी हैं तो वहाँ ज्ञान हुआ शब्दसे। अतः यहाँ शब्द-ज्योति है। यदि ऐसा मौका लग जाय कि दोनों ही अंधे हों और दोनों ही गूँगे हों, दोनों ही बहरे हों तो वहाँ एक-दूसरेको कैसे पहचानें। वहाँ स्पर्श-ज्योति है। एक-दूसरेको छू करके समझ लेगा। इससे यह मालूम होता है कि ये सब ज्योतियाँ हैं। विषय भी ज्योति है, इन्द्रियाँ भी ज्योति हैं और ये सब ज्योतियाँ परमात्मासे हैं। इसलिये वह ज्योतियोंका ज्योति है। इससे परे ज्योति मन है जिसे पाँचों विषयोंका ज्ञान है, पाँचों भूतोंका ज्ञान है, इसलिये मनके द्वारा सबका ज्ञान हो जाता है। पर मनका ज्ञान इन्द्रियोंको नहीं होता, विषयोंको नहीं होता। इसलिये मन ज्योति है और मनसे परे ज्योति बुद्धि है। जिससे मालूम हो जाता है कि मेरा मन कलकत्ते चला गया, बंबई चला गया, मेरा मन आज ठीक-ठिकाने नहीं है। जहाँ बुद्धिद्वारा यह बात समझमें आ जाती है वहाँ बुद्धि-ज्योति है और बुद्धिका भी ज्ञान होता है आत्मासे। आज मेरी बुद्धि ठीक नहीं है। आज मेरी बुद्धि मलिन है। मेरी बुद्धि इस समय बहुत तीक्ष्ण है। यह ज्ञान आत्माको होता है, अतः आत्मज्योति इन सबसे परेकी ज्योति है। आत्मज्योतिसे भी और परेकी ज्योति भक्तिके मार्गमें परमात्मज्योति है। ज्ञानके सिद्धान्तमें आत्मा और परमात्मा एक

ही चीज है, उससे परे कोई चीज है ही नहीं। और भक्तिके मार्गमें जीवसे भेद किया जाता है। आत्मज्योतिसे परमात्मज्योति महान् है। इसलिये भगवान्‌का स्वरूप जो जाननेमें आनेवाला है वह ज्योतियोंकी भी ज्योति है। वही सारी ज्योतियोंका प्रकाशक है, दुनियामें जितनी भी ज्योतियाँ हैं परमात्मासे ही हैं, उनमें परमात्मासे ही प्रकाश आया है और सत्ता आयी है। उनमें जो कुछ भी सत्ता और सत्‌भूति है वह परमात्मासे ही है। परमात्मा ही उस ज्योतिमें स्थित है। तम यानी अज्ञान, अन्धकारसे परमात्मा एकदम विलक्षण है—एकदम रहित है। सूर्यके पास भी अन्धकार नहीं जा सकता फिर परमात्माकी तो बात ही क्या है? ज्ञान माने चेतनस्वरूप। जाननेमें आनेवाला जड और जाननेवाला चेतन है। परमात्मा जड नहीं है, चेतन है। जितने जाननेमें आनेवाले पदार्थ हैं, पाँचों भूतोंसे लेकर बुद्धितक जितने जड पदार्थ हैं और इन सबका कारण अव्याकृत माया है वह भी जड है। परमात्मा जड नहीं है, चेतन है। परमात्मा जाननेके योग्य है इसलिये उसका नाम ज्ञेय है। ज्ञेयके ऊपर प्रकरण आरम्भ हुआ और ज्ञेयमें ही समाप्त होता है। उपक्रम भी ज्ञेयमें, उपसंहार भी ज्ञेयमें। भगवान् गीताके १३वें अध्यायके १२वें श्लोकमें कहते हैं—

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।

मैं तुमको ज्ञेय कहूँगा जिसे जानकर साधक अमृतको प्राप्त हो जाता है और ज्ञेयका प्रकरण। '**ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्**'—१७वें श्लोकके उत्तरार्धमें समाप्त किया जाता है। परमात्मा ज्ञेय यानी जाननेके योग्य है, चेतनस्वरूप है '**ज्ञानगम्यम्**' बुद्धिकी वृत्तिरूप ज्ञानद्वारा गम्य है। भगवान् गीतामें कहते हैं—'**बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्**' इन्द्रियोंके परे है, किंतु बुद्धिके द्वारा निर्गुण-निराकार परमात्माका आनन्दमय स्वरूप

ज्ञानमें आता है। '**सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयम्**' सूक्ष्म दृष्टिवाले पुरुष सूक्ष्म-बुद्धिसे उस परमात्माका अनुभव करते हैं। इसीलिये इसकी ज्ञेय संज्ञा है। अचल, शुद्ध, सूक्ष्म, पवित्र हुई तीक्ष्ण बुद्धिके द्वारा परमात्माके स्वरूपका अनुभव होता है। वह परमात्मा सबके हृदयमें आत्मारूपसे विराजमान है '**हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।**' शरीरमें जो द्रष्टा, साक्षी, ज्ञाता, पुरुष-रूपसे है। जो इस प्रकारसे जानता है कि यह शरीर है, ये इन्द्रियाँ हैं, यह मन है, यह बुद्धि है इन सबको जाननेवाला जिसे हम ज्ञाता कहते हैं, जिस ज्ञाताको दूसरा कोई भी नहीं जान सकता वह ज्ञाता स्वयं अपने-आपको जानता है, इस प्रकार वह सबके हृदयमें ज्ञाताके रूपमें विद्यमान है। सबके बीचमें वह चमकता है। इस प्रकार उस परमात्माके चिन्मय स्वरूपको बताया। परमात्मा सत्-चित्-आनन्दका स्वरूप है, ध्रुव सत्य है, उसका कभी अभाव नहीं है, भावरूप है, '**सद्भावे साधुभावे च**' यह सत् शब्द भावका वाचक है। इसका प्रयोग भावके विषयमें किया जाता है और श्रेष्ठ भावमें भी किया जाता है, साधु-भावमें किया जाता है। यह सत् परमात्माका वाचक है, परमात्मा है बस इतना-सा दृढ़ निश्चय हो जाय तो उससे परमात्मा छिपकर नहीं रहते। उसके लिये प्रकट हो जाते हैं, किंतु विश्वास दृढ़ होना चाहिये। दर्शन न होनेपर भी परमात्माके विषयमें यह विश्वास है कि भगवान् हैं। हम नहीं जानते कि भगवान् कैसे हैं, किन्तु हैं यह हमें पूरा विश्वास है। जब ऐसा विश्वास हो जाता है तो आगे जाकर भगवान् अपने-आप ही प्रकट हो जाते हैं। जैसे प्रह्लादको यह पूरा विश्वास था कि भगवान् हैं। मुझमें भी हैं, आपमें भी हैं, इस खंभेमें भी हैं, तलवारमें भी हैं, सब जगह भगवान् हैं। जब सब जगह भगवान् हैं यह भाव हो जाता है तब भगवान् छिपकर नहीं रह सकते।

और आगे बढ़नेपर तो बात ही क्या है कि भगवान् कैसे हैं? भगवान् चेतन हैं, चेतन मतलब द्रष्टा हैं, साक्षी हैं। भगवान्‌का स्वरूप केवल चिन्मय है। हमारे शरीरमें जैसे आत्माका स्वरूप है। यह तो अल्पज्ञ है और वह सर्वज्ञ है। वह चेतनके सिवाय कुछ भी नहीं है। जब यह निश्चय कर ले कि भगवान् हैं और चेतन हैं बस परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है, फिर वह कैसा चेतन है उसका ज्ञान आगे जाकर आप ही हो जाता है—जब भगवान् प्रकट हो जाते हैं। वह चेतन है, वही आनन्द है और आनन्द ही चेतन है। वह अत्यन्त आनन्दस्वरूप है। आनन्द-ही-आनन्द है—ऐसा आनन्द कि इन्द्रियोंकी वहाँ पहुँच ही नहीं है, बुद्धिके द्वारा ग्रहणमें आता है, ऐसा आनन्द है, आनन्दरूप है। जिस समय उस आनन्दमय परमात्माको बुद्धिके द्वारा अनुभव कर लेता है फिर वहाँसे चलायमान नहीं होता और वहाँ परमात्माका ज्ञान उत्पन्न होता है, उस अज्ञानका नाश होकर ज्ञान भी शान्त हो जाता है और केवल आनन्दमय परमात्मा ही रह जाता है।

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥

(गीता ६। २१)

इस प्रकार निराकार परमात्माका ध्यान बतलाया गया।

ईश्वर, महात्मा, परलोक और शास्त्रमें श्रद्धा

हमलोगोंको गीताविषयक ज्ञान बढ़ाना चाहिये। यह अध्यात्म-विषयक ज्ञान परमात्माकी प्राप्तिमें बहुत सहायक है। जैसे जप करना, ध्यान करना सहायक है, उससे भी ज्यादा सहायक है 'भाव'। ज्ञानका बढ़ना भावका ही बढ़ना है। प्रेम भी एक भाव है, ज्ञान भाव है, दया भाव है, क्षमा भाव है, श्रद्धा भाव है। जहाँ भी भाव और क्रियाका प्रकरण आया है उस जगह यह बात आयी है कि 'भाव' क्रियासे बलवान् है।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥

(गीता १२।१२)

यहाँ भी अभ्यास चाहे शास्त्रोंका पठन हो, प्राणायाम हो, चाहे भगवान्‌के नामका जप हो कोई भी चीज अभ्यासमें पकड़ लें—अभ्याससे ज्ञान श्रेष्ठ है ऐसा बताया है। क्योंकि ज्ञान भाव है। साधारण ज्ञान या पुस्तकज्ञान जो उच्च कोटिका अर्थात् वास्तविक ज्ञान नहीं है वह भी अभ्याससे श्रेष्ठ है। यह अपरोक्ष ज्ञान नहीं है, परमात्माका वास्तविक, तात्त्विक ज्ञान नहीं है। उस (तात्त्विक ज्ञान)-से नीची श्रेणीके ज्ञानसे परमात्माका ध्यान श्रेष्ठ है। भगवान्‌की भक्तिमें ध्यान प्रधान है और परोक्ष ज्ञानसे भी श्रेष्ठ है किंतु उस ध्यानसे भी निष्काम-भाव श्रेष्ठ है—'**ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्**'—कर्मफलका त्याग निष्कामभाव है। वह निष्कामभाव ध्यानरूपी क्रियासे भी बढ़कर है और ध्यानवाली क्रिया नाम-जप आदि क्रियासे भी बढ़कर है।

साधारण शास्त्रज्ञान जो कि परमार्थ विषयका असली ज्ञान नहीं है। वह भी बिना विवेकके किये हुए अभ्याससे श्रेष्ठ है।

उसकी तुलना करते समय यह समझना चाहिये कि अभ्यासमें तो ज्ञान नहीं है और ज्ञानमें अभ्यास नहीं है। ज्ञानमें यदि अभ्यास हो तो उससे फिर ध्यान श्रेष्ठ नहीं बतलाया जा सकता और अभ्यासमें यदि ज्ञान होवे तो उस अभ्याससे ज्ञान श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता; क्योंकि अभ्यासके साथमें ज्ञान है तो ज्ञानकी तुलनामें ज्ञान तो बराबर हो गया और अभ्यास वहाँ अधिक रह गया। इसी तरह ज्ञानके साथ यदि ध्यान हो तो ध्यान-ध्यान तो बराबरमें रह गया और वहाँ ज्ञान अधिक रह गया। ध्यानसहित ज्ञानसे यहाँ विवेकहीन ध्यान श्रेष्ठ नहीं कहा गया है, किन्तु ध्यानरहित ज्ञानसे ध्यानको श्रेष्ठ कहा गया है। जहाँ कर्मफलके त्यागको ध्यानसे श्रेष्ठ कहा गया है वहाँ उस ध्यानमें कर्मफलका त्याग नहीं है। ध्यानमें यदि कर्मफलका त्याग होवे तो कर्मफलका त्याग तो कर्मफलके त्यागके मुकाबलेमें बराबर रह जाता है और ध्यान अधिक हो गया। यह इस प्रकार समझना चाहिये कि तुलना करते समय अभ्यासमें केवल अभ्यास ही है उसमें ज्ञान नहीं है, ज्ञानमें ज्ञान ही है उसमें ध्यान नहीं है और ध्यानमें निष्कामभाव नहीं है,केवल ध्यान ही है। इसीलिये इस तुलनामें एकको अपेक्षा दूसरा श्रेष्ठ हुआ। श्लोकके अर्थका तात्पर्य भी साथ-साथ समझ लेना चाहिये क्योंकि यह जटिल श्लोक है।

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्॥

(४।१८)

यह भी जटिल श्लोक है। ऐसे बहुत-से जटिल, कठिन श्लोक गीतामें आये हैं। उनका खुलासा करना चाहिये उससे बहुत लाभ होता है। दूसरी बात यह है कि अपने लोगोंको इतने वर्षोंमें भी परमात्माकी प्राप्ति नहीं हुई इसका प्रधान कारण है कि परमात्माकी प्राप्तिके जितने साधन हैं या जिन साधनोंका

फल परमात्माकी प्राप्ति है उन साधनों और फलमें जितनी श्रद्धा होनी चाहिये उससे थोड़ी है और श्रद्धाकी कमीके कारण ही साधनकी कमी है। साधन तीव्र होनेमें श्रद्धा ही प्रधान है। इसीलिये गीता जो भगवान्‌के वचन हैं उनमें हमलोगोंको श्रद्धा करनी चाहिये, विश्वास करना चाहिये। श्रद्धा-विश्वास होनेपर फिर साधन अपने-आप ही तीव्र होने लगता है। फिर साधन तीव्र होनेसे परमात्माकी प्राप्ति अपने-आप ही हो सकती है।

इस तरह हमें जोर लगाना चाहिये। यह अपनी व्यक्तिगत कमी है। इसकी पूर्ति अपने द्वारा ही हो सकती है, क्योंकि श्रद्धा करना स्वयंका काम है। श्रद्धाके उपाय बतलाये जाते हैं। दूसरेको देखकर भी श्रद्धा होती है कि अमुक आदमीकी श्रद्धा अधिक है। उसकी श्रद्धा देखकर उसके अनुकरण करनेकी इच्छा होती है। दूसरा परलोक, महात्मा, शास्त्र, ईश्वर—ये श्रद्धा करनेके योग्य पात्र हैं, उनमें श्रद्धा स्वाभाविक होती है। जन्म-जन्मान्तरके स्वभावमें, गुण, आचरण और प्रभावको लेकर भी होती है। सगुण-निराकार गुणको लेकर होती है, क्योंकि उसमें कोई चरित्र नहीं है। सगुण-साकारमें लीला, चरित्र देखकर होती है और जो निर्गुण-निराकार है उसका नाम ही निर्गुण है। ईश्वर और महात्माके विषयमें शास्त्र प्रमाण हैं इसलिये शास्त्रको लेकर भी श्रद्धा होती है। शास्त्रोंके कारण जो श्रद्धा होती है वह श्रद्धा शास्त्रजा है क्योंकि शास्त्रसे उत्पन्न होती है। स्वाभाविक श्रद्धा जो होती है वह स्वभावजा श्रद्धा है—भगवान् गीतामें कहते हैं—

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु॥

(१७।२)

जीवात्मामें स्वभावजा श्रद्धा तीन प्रकारकी होती है। देहाभिमानियोंके देहमें यानी मनुष्योंके हृदयमें उसके तीन भेद

हैं—सात्त्विकी, राजसी और तामसी—इन तीनोंके भेदको तू मुझसे सुन। इस बातकी प्रतिज्ञा करके भगवान्‌ने पूरे अध्यायमें श्रद्धाका ही विषय चलाया। जिनको शास्त्रका ज्ञान नहीं है उनमें स्वाभाविक श्रद्धा है, स्वभावमें ही श्रद्धा है। उनमें जन्मसिद्ध ही श्रद्धा है। उनमें सात्त्विकी श्रद्धा भी है, राजसी श्रद्धा भी है और तामसी श्रद्धा भी है। तामसी श्रद्धावाले पुरुष तो भूत-प्रेत आदिका पूजन करते हैं। श्मशानमें जाकर भूत-प्रेतकी सेवा करते हैं, भूत-प्रेतको ज्यादा मानते हैं। उनका ज्यादा प्रयोग करते हैं। राजसी पुरुष यक्ष, राक्षसकी सेवा करते हैं। यक्ष माने कुबेर जिसको धनकी इच्छा होती है वे कुबेरकी पूजा करते हैं। धनेष्ठियज्ञ करते हैं जिससे कुबेरसे विशेष लगाव हो जाता है। नवग्रहकी पूजा करते हैं, नवग्रहमें राहु-केतु राक्षस हैं। राजसी आदमी उनकी पूजा करते हैं। जैसे हमारे घरमें विवाह आदि है या हम विदेशोंमें धन कमानेके लिये जाते हैं तथा सकामभावसे नवग्रहकी पूजा करते हैं। देवताकी भी पूजा हो गयी और राक्षसोंकी भी पूजा हो गयी। नवग्रहमें सात देवता और दो राक्षस हैं। सात ग्रहोंमें सौम्य ग्रह भी हैं और क्रूर ग्रह भी हैं। यानी सभी तरहके ग्रह हैं। उनमें सबसे ज्यादा क्रूर-स्वभाव शनिका है और उससे थोड़ा कम मंगलका है तथा थोड़ा और कम शुक्रका—ये क्रूर-ग्रह हैं। दूसरी तरफ, जो सौम्य ग्रह हैं उनमें चन्द्रमा और बृहस्पति ये शान्तिमय और सौम्य ग्रह हैं। ये देवता भी हैं और इनका स्वभाव भी ठंडा है। सकामभावसे इनकी पूजा करना राजसी है। यक्ष और राक्षसकी पूजाकी अपेक्षा तो देवताओंकी पूजा करना सात्त्विकी है। यह स्वाभाविक बात है। किन्तु निष्कामभावसे नवग्रह आदिकी पूजा करना सात्त्विकी है। प्रकरण चल रहा है—श्रद्धाका। अपनेको सात्त्विकी श्रद्धा बढ़ानी है। देवताओंमें भी अगर चुना जाय तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश सबसे

श्रेष्ठ हैं। उनमें भी कोई तो शिवजीकी उपासना करते हैं, कोई विष्णुजीकी करता है, राक्षस लोग प्रायः ब्रह्माजीकी उपासना करते हैं, कोई-कोई तीनोंकी करता है। अपने जो इष्टदेव हैं—चाहे विष्णु हों, शिव हों, श्रीराम हों, श्रीकृष्ण हों, सगुण हों, निर्गुण हों, साकार हों, निराकार हों यानी जो अपना इष्टदेव हो उसमें श्रद्धा बढ़ावे और शास्त्रोंमें भी बढ़ावे। शास्त्रोंमें बढ़नेसे इष्टदेवमें श्रद्धा अपने-आप ही बढ़ जाती है। ये श्रद्धाके योग्य हैं। महात्माओंमें और अपनी आत्मामें भी श्रद्धा करनी चाहिये। आत्मामें श्रद्धा करनी यह है कि मेरा शरीर नाश होनेके बाद भी मेरी आत्मा कायम रहेगी यह विश्वास करे। यह विश्वास जो करेगा वह पापकर्म नहीं करेगा क्योंकि वह समझेगा कि पाप तो तुमको ही भोगना पड़ेगा चाहे इस शरीरमें या दूसरे शरीरमें। ईश्वरकी राजधानीसे बाहर कहाँ जायगा। अपनी आत्मापर यही विश्वास करना है कि शरीर नष्ट होनेके बाद भी आत्मा कायम रहेगी, यही अपने-आपपर विश्वास करना है, यही परलोकपर विश्वास करना है। मरनेके बाद जो लोक है वह परलोक है। मरनेके बाद परलोक होनेका मतलब है कि मरनेके बाद मैं कायम रहता है। आत्मा कायम रहती है। शरीरका नाश होनेसे आत्माका नाश नहीं होता है। यह आत्माका अस्तित्व है, आत्मा नित्य है, सत्य है, यह आत्मामें विश्वास करना और परलोकको मानना है। इसलिये यह कहना है कि आत्मापर, परमात्मापर, महात्मापर और शास्त्रपर विश्वास करना चाहिये। पूज्यभावसे विश्वास करनेका नाम श्रद्धा है। शास्त्रोंमें भी पूज्यभाव, ईश्वरमें भी पूज्यभाव और महात्माओंमें भी पूज्यभाव करना चाहिये। आत्मा शुद्ध निर्विकार है, नित्य है ऐसा भाव और आत्मामें भी उच्च कोटिका भाव भी पूज्यभाव है, ये सब श्रद्धाके योग्य हैं। ऐसी चेष्टा करनी चाहिये कि इन सबमें श्रद्धा बढ़े। यह चेष्टा

अवश्य करनी चाहिये और अपनेमें इसकी बड़ी कमी है। इन चारोंमेंसे यदि एकमें भी विश्वास हो जाय तो मनुष्यका कल्याण हो जाय और यदि चारोंमें हो जाय फिर तो बात ही क्या है?

दूसरी बात यह है कि श्रद्धाके योग्य होनेसे चारों एक ही जातिकी चीज हैं। एकमें श्रद्धा होनेसे दूसरेमें अपने-आप ही हो जाती है, तीसरेमें अपने-आप ही हो जाती है। इसीलिये यह जोर दिया जाता है कि किसी एकमें भी विश्वास कर लेनेसे मनुष्यका कल्याण हो जाता है। अपनेको तो सबमें ही करनी चाहिये। फिर भी इन चारोंमें सबसे एक नम्बर है—भगवान् यानी परमात्मा। दो नम्बरमें हैं—महात्मा पुरुष, तीन नम्बरमें है—अपनी आत्मा और परलोकका अस्तित्व और चार नम्बरमें हैं—शास्त्र। शास्त्रोंको चार नम्बरमें इसलिये बतलाया कि महाभारत वनपर्वमें राजा युधिष्ठिरसे यक्षने प्रश्न किया कि मार्ग क्या है? उन्होंने कहा कि परमात्माकी प्राप्तिके विषयमें शास्त्र-श्रुतियाँ, स्मृतियाँ और मुनि सब भिन्न-भिन्न मार्ग बताते हैं। एक भी ऐसा प्रामाणिक मुनि नहीं जिसपर हमलोग निर्भर हो सकें। ऐसी अवस्थामें वर्तमानमें जो महात्मा पुरुष हैं वे जिस प्रकारसे चलें वैसे चलना चाहिये—यही मार्ग है। इसमें महात्माओंको शास्त्रोंसे प्रधानता दी है। इसलिये मैंने भी महात्माओंके बाद शास्त्रोंको बतलाया। अब यह बात आयी कि शास्त्र और आत्मा किसमें विश्वास करना चाहिये। कौन ज्यादा बलवान् है। दोनों बात एक ही है। शास्त्रमें विश्वास होनेसे शास्त्र यह कहता ही है कि 'परलोक है' और आत्मामें विश्वास होनेसे ठीक है ही, आत्मामें विश्वास होना ही चाहिये।

प्रश्न—तब आपने यहाँ आत्माकी प्रधानता तीसरे नम्बरमें कैसे कही?

उत्तर—मरनेके बाद भी आत्मा रहती है यह विश्वास करना

चाहिये। शास्त्रोंकी अपेक्षा इस बातपर ज्यादा जोर दिया। शास्त्रोंमें जैसे हिन्दूधर्ममें शास्त्र मान्य हैं, अंग्रेजोंके लिये बाइबिल आदि उनके शास्त्र मान्य हैं, ऐसे ही मुसलमानोंके लिये कुरान शरीफ मान्य है और उन शास्त्रोंमें वे लोग परलोकको नहीं मानते। अपने लोग कह सकते हैं कि आपका भी शास्त्र है और हमारा भी शास्त्र है। इसीलिये सिद्धान्तपर ज्यादा जोर दिया कि परलोक है यानी कि मरनेके बाद भी आत्मा है इसपर ज्यादा जोर देना चाहिये। और जब इसपर ज्यादा जोर दे दिया जावे और वह आदमी उतनी बात मान ले तो उसके लिये आगे चलकर अपने-आप खोज होगी कि यदि मरनेके बाद भी आत्मा है तो मेरी आत्माको सुख कैसे पहुँचे। फिर वह शास्त्रको आप ही सँभालेगा कि उसके लिये शास्त्रमें क्या लिखा है। इसलिये आत्मापर जोर दिया।

आत्मासे भी महात्मापर ज्यादा जोर दिया और महात्मासे भी परमात्मापर ज्यादा जोर दिया। परमात्मा सबकी आत्मा है। परमात्मापर श्रद्धा-विश्वास एक नम्बरमें, दो नम्बरमें महात्मा, तीन नम्बरमें अपनी आत्मा और चार नम्बरमें लोगोंका लिखा हुआ शास्त्र, क्योंकि इनमें तो भिन्नता है।

इन तीन बातोंके विषयमें अपने हिन्दू-धर्ममें, शास्त्रोंमें, श्रुतिमें, पुराण, स्मृति, इतिहास आदिमें खूब ही जोर दिया है। इन तीनोंको ही श्रद्धा करनेके योग्य बतलाया इसलिये ये श्रद्धा करनेके योग्य हैं। अपने लोगोंको खूब श्रद्धा करनी चाहिये। नचिकेताका भी प्रधान प्रश्न यही था कि मरनेके बाद आत्मा है या नहीं? यमराजने भी यह सिद्ध करके दिखलाया कि मरनेके बाद आत्मा है। इस प्रकारका प्रश्न करनेवाला नचिकेता-जैसा पुरुष पात्र समझा गया कि यह बड़ा अच्छा प्रश्न है। मुक्ति-विषयक प्रश्न है। क्योंकि सब शास्त्रोंका वचन एक नहीं है।

कोई कुछ, कोई कुछ कह रहा है। जैसे अपने संत वाणी है वैसे ही जितने भी संत हुए सब भिन्न-भिन्न रूपसे कह रहे हैं और ऋषियोंकी वाणी ही तो शास्त्र हैं।

अपने-आपपर विश्वास करके आत्माका निर्णय मानना चाहिये इसका मतलब यह है कि जिसको शास्त्र, परलोक, ईश्वर तथा महात्मा इन चारोंमें किसीपर भी विश्वास नहीं है उसे अपनी आत्मापर तो विश्वास करना ही चाहिये। अपनी आत्माका विश्वास यह है कि अपनी आत्मा जो सलाह देवे वह माननी चाहिये। 'आत्मा नित्य है, सत्य है' कम-से-कम यह बात माननी चाहिये। आत्माकी सलाह कैसे? जैसे कोई भी बात हो तो हम अपनी भीतरकी आत्मासे पूछें क्योंकि आत्मा ही परमात्मा है। हरेक कामकी यदि आत्मासे सलाह ली जावेगी तो अपनेको भीतरसे ठीक शिक्षा ही मिलेगी फिर चाहे अपना मन उस बातको माने या न माने। अगर अपने लोग, अपनी आत्मासे पूछेंगे कि झूठ, कपट, चोरी, बेईमानी करना अच्छा है या बुरा तो आवाज आयेगी—बुरा। चाहे आसक्तिके कारण उसको छोड़ नहीं सकें यह अलग बात है क्योंकि वह तो अपना दोष है किंतु सलाह यही मिलेगी कि उत्तम बात तो यही हैं। जैसे आपको बताया जावे कि आसुरी सम्पदासे दैवी सम्पदाके गुण श्रेष्ठ होते हैं, शास्त्र स्वीकार करे वही आचरण, वही लक्षण, वही गुण जिसमें हों वही दैवी सम्पदावाले होते हैं और जिसको शास्त्र निषेध करे वही गुण आसुरी सम्पदावाले हैं। अगर पूछा जाय कि सत्य बोलना श्रेष्ठ है कि मिथ्या? यही बात कही जायगी कि सत्य बोलना श्रेष्ठ है। सत्यको एक तरफ रखे और मिथ्याको एक तरफ रखे।

दूसरी बात यह है कि हिंसा करनी चाहिये या किसीका उपकार करना चाहिये? यही उत्तर मिलेगा कि उपकार करना

चाहिये, हिंसा तो किसीकी करनी ही नहीं चाहिये। यदि तीसरा प्रश्न किया जाय कि व्यभिचार अच्छी चीज है या ब्रह्मचर्य अच्छी चीज है? ब्रह्मचर्य-पालन करनेके समान अच्छी चीज है ही नहीं। बात तो यही कही जावेगी चाहे ब्रह्मचर्यका पालन न हो पर सिद्धान्त तो आत्मा यही मानेगी। इस प्रकार ऐसे सिद्धान्तसे सिद्ध क्या होगा? गीताके १६वें अध्यायमें दैवी सम्पदाके छब्बीस लक्षण हैं ये उत्तम कहे जाते हैं। इनको काममें लानेसे हमको इनसे लाभ मिलेगा। काममें लानेके उद्देश्यसे हमको यह बात समझनी चाहिये। अपने लोग यदि इस प्रकार यह ग्रहण करनेयोग्य है और यह त्याग करनेयोग्य है विभाग कर लेवें तो इसका नतीजा यह होगा कि आसुरी सम्पदामें जितनी बात बतलायी गयी है वे तो त्याज्य होंगी और दैवी सम्पदामें जितनी बातें बतलायी गयी हैं वे ग्रहण करनेयोग्य होंगी। दैवी सम्पदाको तो ग्रहण करना चाहिये और आसुरी सम्पदाका त्याग करना चाहिये। इस बातपर खूब जोर लगाना चाहिये। आसुरी सम्पदाको तो विषके समान समझना चाहिये और दैवी सम्पदाको अमृतके समान समझना चाहिये। इसको अपना जीवन समझे, प्राण समझे, असली धन समझे। दैवी सम्पदा ईश्वरकी संपत्ति है और आसुरी सम्पदा राक्षसोंकी संपत्ति है तथा नरकमें ले जानेवाली, बाँधनेवाली और पतन करनेवाली है। दैवी संपत्ति मुक्ति देनेवाली, ऊपर उठानेवाली और कल्याण करनेवाली है। यह बात समझकर इनका आश्रय लेना चाहिये। अपनी आत्मामें, हृदयमें समझकर कि यह बात बुरी है हमलोग उसका त्याग नहीं कर सकते, उसका सेवन करें तो यह समझना चाहिये कि अपने लोग स्वयं ही अपनी आत्माका पतन कर रहे हैं। जिस बातको अपने लोग विचारके द्वारा, समझके द्वारा, शास्त्रके द्वारा, महापुरुषोंके द्वारा बुरी समझते हैं, श्रुति, स्मृतिसे जो बात बुरी

मालूम पड़ती है, अपनी आत्मा भी गवाही देती है कि यह बात बुरी है और उसके पालन करनेवालेको अपने लोग बुरा समझते हैं, नीचे दर्जेका और पतित समझते हैं कि यह गिर गया फिर वही काम अपने करें तो अपने भी अपनी दृष्टिसे स्वयं गिर गये। जिनमें अच्छे लक्षण हैं उनको अपने अच्छा समझते हैं और कहते हैं कि इन लक्षणोंवाला श्रेष्ठ पुरुष है। उनको वैसा समझकर भी अपने लोग उसका सम्पादन नहीं करते, उसको अपने काममें लानेकी चेष्टा नहीं करते यह अपने-आपके द्वारा अपना पतन है। यानी जिससे अपना पतन हो रहा है उसको रोक नहीं रहे हैं और उसमें रुकावट नहीं डाल रहे हैं। हृदयमें जो उत्तम गुण हैं उन गुणोंका आचरण करके अपनी आत्माको अपने उन्नत नहीं कर रहे हैं। जिस बातको बुरी समझे उसीका फिर पालन करे यही अपने-आपके द्वारा अपना पतन करना है।

जिस बातको हम निर्णय करके निश्चित ही हमारे लिये हितकी समझ लेवें उसका हम पालन करें। वही हमारे लिये अपने-आपका अपने द्वारा उन्नत करना है। उन्नतिमें रुकावट डालना है कि अपने-आपको उन्नत न करना, जिस बातको अच्छी समझे उस बातको काममें न लाना। और अपने-आपको पतन होते हुए रोकना क्या है? जिस कामको हमने बुरा समझ लिया उस कामको हम न करें। यही अपने पतनमें रुकावट डालना है और उनसे विपरीत दूसरे काम करना तो अपने द्वारा अपनी आत्माका पतन करना है और न करें तो उसको मार्गमें रोक देना है फिर जितने दोष हमारेमें आ गये हैं उनके विनाशके लिये जो उपाय बतलाये हैं उनका साधन करें—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामःक्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

(१६।२१)

काम, क्रोध, लोभ—ये साक्षात् नरकमें ले जानेवाले हैं यानी नरकके द्वार हैं या नरकके मार्ग हैं और आत्माका पतन करनेवाले हैं। इसीलिये इनका त्याग कर देना चाहिये। इनका त्याग करके जो पुरुष अपनी आत्माके कल्याणके लिये प्रयत्न करता है वह श्रेयको यानी परमात्माको प्राप्त हो जाता है, अपनेको वही करना चाहिये। मन, इन्द्रियाँ, बुद्धि अलग-अलग चीज हैं। बुद्धिरूपी सारथि, मनरूपी लगाम और इन्द्रियाँरूपी घोड़े हैं। जिसका सारथि विज्ञानवान् है उसको अच्छे मार्गमें ले जाकर भगवान्‌के परमधाममें पहुँचा देता है। और जिसका सारथि नीचे दर्जेका है वह उसको रथसहित कहीं घोर गड्ढेमें ले जाकर डुबा देता है। अपने बुद्धिरूपी सारथिको ठीक बनाना चाहिये फिर चिंताकी कोई बात नहीं है। बुद्धिके भीतर जो समझ है, निश्चय है उसको खूब बढ़ाना चाहिये। वह भगवान्‌के विषयकी, परमार्थके विषयकी, भक्तिकी, ज्ञानकी, वैराग्यकी वार्तालापसे बढ़ती है। उस प्रकार बुद्धिको खूब बढ़ाना चाहिये यह तुरंत कल्याण कर देता है। मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ सब अपनी हैं, इसलिये भगवान्‌ने यह उपदेश दिया है कि अपनी बुद्धिके द्वारा इस तत्त्वको समझकर मनको रोककर उस पापी कामको मारे। भगवान् अपनेको चेतावनी दे रहे हैं, अपने बलकी तरफ लक्ष्य करवा रहे हैं कि तुम जो चाहो वैसे ही कर सकते हो। फिर अपनेको भगवान्‌के ऊपर निर्भर होकर करना ही चाहिये। उनके भरोसेपर अपनी कमर कसकर मनुष्य जिस कामको करता है उसका वह काम सिद्ध हो जाता है।

नारायण! नारायण!! नारायण!!!

मनुष्यका कर्तव्य, आत्माकी उन्नतिके लिये चेतावनी

होनेवाली सारी क्रिया साधनके रूपमें होनी चाहिये। अपनेसे कोई भी क्रिया बने वह परमात्माकी प्राप्तिका साधन होना चाहिये। इसमें कमी नहीं रहनी चाहिये। इस प्रकार समझकर जो मनुष्य अपना समय व्यतीत करता है वही बुद्धिमान् है। प्रातःकाल सूर्योदयसे एक घंटा पहले उठकर भगवान्को याद करना चाहिये। भगवान्को और पृथ्वीको नमस्कार करके फिर शौच, दातुन करके स्नान करना चाहिये। फिर सब नित्य-कर्म करने चाहिये। यज्ञोपवीत हो तो संध्या-गायत्री सूर्योदयके पूर्व करने चाहिये। गीताका अर्थसहित पाठ करना, इसी प्रकार रामायणके चार दोहेतकको चौपाइयाँ अर्थ, भाव समझकर पढ़े। अर्थ और भावको समझकर चौपाइयाँ पढ़नेसे बहुत ज्यादा लाभ होता है। इसी प्रकार भगवान्के नामका जप करना चाहिये। कलियुगका महामन्त्र है—*'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥'* इस महामन्त्रकी माला जितनी फेर सके उतनी फेरे। भगवान्के नामका जप निष्कामभावसे करना चाहिये, श्रद्धा-भक्तिपूर्वक करना चाहिये। जप आलस्यरहित स्फुरणारहित होकर नित्य निरन्तर होने लगे तो वह जप बहुत महत्त्वपूर्ण है। जप मनसे करना चाहिये और ऐसा जप करके गुप्त रखना चाहिये। साथ-साथ भगवान्के गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्यकी तरफ खयाल रखते हुए उनके स्वरूपका ध्यान करना चाहिये जिससे श्रद्धा, प्रेम बढ़े और चित्तमें समता और शान्ति मिले। ध्यान करके फिर भगवान्की मानसिक पूजा करे। भगवान्का आह्वान

करके भगवान्‌का ध्यान करे और फिर भगवान्‌की पूजा करे, पूजाके साथ नमस्कार तो है ही। मानसिक पूजा बहुत श्रद्धा-प्रेमसे, उच्च भावसे करे और फिर भगवान्‌के भोग लगावे और भगवान्‌की आरती उतारकर भगवान्‌की स्तुति गावे तथा फिर भगवान्‌से प्रार्थना करे और अन्तमें भगवान्‌के ध्यानमें मस्त होकर फिर संसारके काममें लगे। भगवान्‌के ध्यानको कायम रखते हुए संसारका काम करे। वाणी या श्वासके द्वारा भगवान्‌के नामका जप और मनसे भगवान्‌का प्रेम-भक्ति-भावसे ध्यान करता हुआ काम करे और काम भी भगवान्‌के लिये ही करे। सबमें भगवान् विराजमान हैं, इसलिये सबके हितकी निष्कामभावसे चेष्टा करे। भगवान्‌को हर वक्त याद रखते हुए भगवान्‌के लिये ही सारी चेष्टा करे। जो काम भगवान्‌के लिये नहीं वह काम करे ही नहीं। कोई भी चेष्टा अर्थ, काम, भोगके लिये नहीं करे। संसारके ऐश, आराम, भोग, शौकीनी, विलासिता राजसी चीजें हैं पतन करनेवाली हैं। इनका दूरसे ही त्याग कर देवे, इनमें तीव्र वैराग्य करे। तामसी कामके तो कभी पास ही नहीं जावे। जैसे दुर्गुण, दुराचार, दुर्व्यसन, निद्रा, आलस्य, प्रमाद—इनके नजदीक ही नहीं जावे। ये सब पाप हैं। इन सबका स्वरूपसे त्याग कर देना चाहिये। पूरे दिन निष्कामभावसे भगवान्‌को याद रखते हुए सात्त्विक काम करे जिससे दुनियामें दूसरोंका उपकार होवे। इस प्रकार दिनभर करके रात्रिमें शयनके समय संसारके संकल्पको त्यागकर भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, लीला, धाम और तत्त्व-रहस्यकी बातोंका मनन करते हुए शयन करे या गुण-प्रभावको याद करते हुए और तत्त्व-रहस्यको समझते हुए भगवान्‌के ध्यानमें मस्त होकर भगवान्‌के नामका जप करते हुए शयन करे तो रात्रिका समय भी साधनके रूपमें परिणत हो जाता है। इस प्रकार हमारा समय

चौबीस घंटे यदि साधनके रूपमें बीतने लगे तो बहुत जल्दी भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है। अपनेको और करना ही क्या है? शरीरका तो एक क्षणका भी भरोसा नहीं है। मनुष्य-जीवनका समय एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाना चाहिये। उत्तरोत्तर अपने समयकी उन्नति करे, साधनकी उन्नति करे। साधनकी उन्नति ही समयकी उन्नति है क्योंकि लाख रुपया खर्च करनेपर भी समय नहीं मिल सकता। ऐसे मनुष्य-जीवनका अमूल्य समय उत्तम-से-उत्तम काममें बितावे। यह मनुष्य-शरीर हमलोगोंको भोग भोगनेके लिये नहीं मिला है, क्योंकि आहार, निद्रा, भय, मैथुन तो मनुष्योंका और पशुओंका समान ही है।

आहारनिद्राभयमैथुनानि समानि चैतानि नृणाम् पशूनाम्।

यदि इसीमें अपना समय बीत गया तो फिर मनुष्यमें और पशुओंमें फरक ही क्या है? यह शरीर आत्माके उद्धारके लिये मिला है, न कि संसारके विषय-भोग भोगनेके लिये—

एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥

(उत्तरकाण्ड ४४। १)

तुलसीदासजी कहते हैं कि हे भाई! यह मनुष्य-शरीर विषय भोगोंके लिये नहीं मिला है। स्वर्ग भी अल्प है, अन्तमें दुःख देनेवाला है। जब मनुष्यको स्वर्गसे गिराया जाता है तो बड़ा दुःख होता है, जैसे यहाँ हमलोगोंको मरनेके समय होता है। जब उसके पुण्य समाप्त हो जाते हैं फिर उसको यहाँ आना ही पड़ता है। फिर पुण्य करता है तो फिर स्वर्गमें जाता है फिर वापस लौटकर आना ही पड़ता है। ऐसे आवागमनके चक्करमें सकाम-कर्म करनेवाले रहते हैं और पाप-कर्म करनेवालोंका आवागमन तो नरक और तिर्यक्-योनिके साथ रहता है, उनकी तो बड़ी घोर यानी नीच गति होती है, तामसी पुरुषोंकी और पापी पुरुषोंकी अधम गति होती है। एक तरहसे सात्त्विक पुरुष जिनमें

कामना है, साथमें रजोगुण है ऐसे पुरुषोंकी दशा मैंने आपको बतलायी। तामसी पुरुषोंकी घोर गति होती है और मनुष्य-शरीरको पाकर भोगोंमें जो मन लगाता है उसकी तुलसीदासजीने निंदा की है—

नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

(मानस, उ० ४४। २)

मनुष्य-शरीर पाकर जो विषय-भोगोंमें मन लगाता है वह मूर्ख अमृतके बदलेमें विष लेता है। परमात्मा अमृतस्वरूप हैं उनकी प्राप्तिका साधन अमृतमय है ऐसे अमृतमय साधनको छोड़कर संसारके विषय-भोगोंमें मन लगाना ही अमृतके बदलेमें विष लेना है। संसारके विषय-भोग विषके तुल्य हैं क्योंकि विषको खानेसे जैसे मनुष्य मर जाता है ऐसे ही विषय-भोगोंको भोगनेसे जन्मता-मरता है। उसको महाविष भी कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी।

ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई॥

(मानस, उ० ४४। ३)

जो पारसमणिको खोकर गुंजा यानी घुँघचीको लेगा उसको कोई भी नहीं कहेगा कि इसने भला काम किया। वह तो मूर्ख ही है जो पारसमणिको खोकर बदलेमें घुँघची लेवे। लोहेको छुआनेसे सोना बन जावे ऐसी पारसमणिको खोकर उसके बदलेमें घुँघची यानी चिरमी लेता है, उसको तो लोग मूर्ख ही कहेंगे। चिरमी तो एक पैसेकी भी नहीं और पारसमणि तो अमूल्य वस्तु है। दिनभर जिससे सोना बनता है चाहे लाखों मन सोना बना लो, उसकी कीमत फिर सोनेसे थोड़े ही आँकी जा सकती है। उसकी कीमत तो आँकी ही नहीं जा सकती, वह तो अमूल्य वस्तु है। इसी प्रकार परमात्माकी प्राप्तिकी कीमत नहीं आँकी जा सकती, वह तो पारससे भी बढ़कर है, संसारके

विषय-भोग तो घुँघचीके समान हैं। घुँघची देखनेमें खूब लाल-लाल होती है किंतु उसका मुँह काला होता है। इसी तरह संसारके विषय-भोग देखनेमें तो खूब चमकीले होते हैं पर जो उनका उपभोग करता है उसका मुँह काला होता है यानी उसका पतन होता है यही मुँह काला होना है। यह समझकर संसारके विषय-भोगोंसे तीव्र वैराग्य रखना चाहिये। इन सबको हानिकारक और विघ्नकारक समझकर मनसे एकदम त्याग कर देना चाहिये। ये सब पतनके हेतु हैं। पूर्वकालमें ऋषि, मुनि, राजर्षि लोग भी धन, ऐश्वर्य, ऐश, आराम, भोग—इन सबका त्याग करके, वनमें जाकर जप-तप करके अपना जीवन बिताया करते थे। इसी प्रकार हमलोगोंको भी कोशिश करनी चाहिये। यही बुद्धिमत्ता है और यहाँ रहकर भी हर वक्त अपना साधन करते हुए जप, ध्यान करते हुए ही निष्कामभावसे सबकी सेवा करनी चाहिये। हमारी प्रत्येक क्रिया सेवासे पूर्ण होनी चाहिये। उसमें सेवाभाव रहना चाहिये। सबको नारायणका स्वरूप समझकर, परमात्माका स्वरूप समझकर सबकी सेवा करनी परमात्माकी सेवा है। ऐसा मौका बार-बार मिलना बड़ा मुश्किल है, भगवान्‌की कृपासे ही मिलता है। उत्तम देश आर्यावर्त देश, उत्तम काल—यह कलिकाल, उत्तम योनि यानी मनुष्य योनि, उत्तम धर्म यानी श्रुतियों, स्मृतियोंसे युक्त सनातन धर्म, उत्तम स्वाध्याय यानी गीता, रामायण आदिका स्वाध्याय, उत्तम संग यानी अच्छे पुरुषोंका संग ये सारी बातें ईश्वरकी कृपासे ही मिला करती हैं। इन सबकी प्राप्ति होनेपर भी हम परमात्माकी प्राप्तिसे वंचित रहें फिर हमारे समान संसारमें कोई मूर्ख नहीं है। हमारे लिये बहुत ही दुःखकी, लज्जाकी बात है कि मनुष्य-शरीर पाकर संसारमें हमें फिर जन्म लेना पड़े और परमात्माकी प्राप्तिसे वंचित रहना पड़े। यह हमारे लिये

कलंक है। यह बात मनमें याद रखकर शीघ्र-से-शीघ्र अपनी आत्माका सुधार होकर उद्धार होवे इसके लिये तत्पर होकर प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये। यह निश्चय रखना चाहिये कि इस संसारमें एक परमात्माके सिवा हमारा और कोई नहीं है, संसारके प्रायः सभी लोग स्वार्थपरायण हैं, हमारे तो एक भगवान् ही हैं। मीराबाई कहती हैं—***'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई'***—मीराबाईने यह अच्छा पाठ सिखाया। इसको अपने हृदयमें धारण करके भगवान् ही एक अपने हैं, ऐसा मानकर उनकी शरण होकर हर समय उनके नामका जप, उनके स्वरूपका ध्यान, उन्हींकी सेवा, पूजा और उन्हींकी आज्ञाका पालन इसीमें अपना समय बिताना चाहिये। हरेक भाई-बहनको यह विचार करना चाहिये कि हमारा संसारमें आना किसलिये हुआ है, हम कौन हैं, हमारा कर्तव्य क्या है? हम क्या कर रहे हैं? विचारनेसे ऐसा मालूम होता है कि हमलोगोंका इस संसारमें आना अपनी आत्माके कल्याणके लिये आत्माके उद्धारके लिये हुआ है। यही हमारा कर्तव्य है और इसीलिये मनुष्य-शरीर मिला है। किंतु हमलोगोंका समय उस काममें नहीं लगकर उसके विपरीत काममें लगता है। यही हम सबके लिये दुःखकी बात है। आप अपने शरीर और इन्द्रियोंसे जो कुछ करते आये हैं वही करते रहें उसमें कोई फेर-बदल करनेकी आवश्यकता नहीं है। केवल अपने मनका सुधार करना चाहिये फिर सभी अपने-आप ठीक हो जावेंगे। मनका सुधार क्या है? मलविक्षेप आवरणका एकदम नाश कर देना चाहिये। मनमें मलिनपना है, मैलापना है उसको मलदोष कहते हैं। मनमें चंचलता है उसको विक्षेपदोष कहते हैं और आवरणदोष है—मायाका पर्दा जिसे अज्ञान कहते हैं, मोह कहते हैं। उसके कारण चित्तकी वृत्तियाँ मोहित रहती हैं; निद्रा, आलस्य आदि

आते रहते हैं जो साधनमें महान् विघ्न हैं। यही अपने अन्तःकरणका सुधार है, यही उद्धारका उत्तम उपाय है। मलदोषके नाशके लिये भगवान्‌के नामका जप सबसे बढ़कर है। सबको नारायण समझकर निष्कामभावसे सबकी सेवासे भी अन्तःकरण शुद्ध होता है, मलदोषका नाश होता है। जैसे तीर्थ, व्रत, तपस्या आदि जितनी उत्तम क्रियाएँ हैं, उन उत्तम क्रियाओंको हम अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये निष्कामभावसे करें तो प्रत्येकसे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है, मलदोषका नाश होता है, पापोंका नाश होता है। पाप ही मलदोष है और दुर्गुण भी मलदोष है। दुर्गुण, दुराचार, दुर्व्यसन ये सब मलदोषके अन्तर्गत ही हैं। विक्षेप माने चित्तकी चंचलता—क्षण-क्षणमें मन कहीं-का-कहीं चला जाता है। हर समय कुछ चिन्तन करता रहता है और अधिकांश समयमें निकम्मे पदार्थोंका जिनसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है, कोई लेन-देन नहीं है—का चिन्तन करता है। केवल समयको नष्ट करता है। इस मनको समझाकर आहिस्ते-आहिस्ते उपरामताको प्राप्त होवे और फिर धीर बुद्धिके द्वारा मनको उस परमात्मामें लगा देवे, परमात्माके ध्यानमें लगा देवे। परमात्माके सिवा और किसी पदार्थका कभी चिन्तन करे ही नहीं। इस प्रकार अपने समयको बिताना चाहिये। फिर प्रश्न उठता है कि हमलोग कौन हैं? हमलोग सब प्राणी हैं। प्राणधारी जीव जो संसारमें चौरासी लाख योनियोंमें भटकते रहते हैं उस ईश्वरके ही अंश हैं। ईश्वर हमारे स्वामी हैं, मालिक हैं या यों कहें कि पितासे भी बढ़कर हैं। पुत्र जैसे पिताका अंश होता है इसी प्रकार हम सब ईश्वरके अंश हैं और ईश्वरकी कृपासे ही यह मनुष्यका शरीर हमलोगोंको मिला है, इसलिये उसीकी शरण होकर उसीके हुक्मके माफिक अपना समय बिताना चाहिये।

यह हमारा परम कर्तव्य है। जैसे पिताकी आज्ञाका पालन करना पुत्रका परम कर्तव्य है। फिर परमात्मा तो सबके परम पिता हैं, उनकी आज्ञाका पालन करना हमारे लिये सबसे बढ़कर है। स्वयं भगवान्‌ने प्रजाको उपदेश देते हुए तुलसीकृत रामायणमें उत्तरकाण्डमें इसकी प्रशंसा की है—

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई॥

(मानस ४३।५)

जो मेरे शासनको मानता है, मेरी आज्ञाका पालन करता है, वह मेरा प्रियतम है। आज्ञापालनके समान कोई सेवा नहीं है। भगवान् कहते हैं कि मेरी आज्ञाका पालन करनेवाला मेरा सच्चा सेवक है, सच्चा मित्र है। इस बातको याद रखकर भगवान्‌की आज्ञाके विपरीत कोई भी काम नहीं करना चाहिये। हर वक्त उनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये। इस प्रकार निष्कामभावसे उनकी आज्ञाका पालन करे तो मलदोषका भी नाश होता है, पापोंका भी नाश होता है और विक्षेपके नाश होनेमें हमे विशेष मदद मिलती है। सर्वथा विक्षेपका नाश तो भगवान्‌के ध्यानसे होता है और भगवान्‌के नामका जप भजन, ध्यानमें सहायक है। भगवान्‌के ध्यानमें वैराग्य बहुत ही सहायक है। एकान्त देशका वास, चित्तमें वैराग्य, संसारके विषय-भोगोंसे उपरति, अध्यात्मविषयक पुस्तकोंका स्वाध्याय, उत्तम पुरुषोंका संग और भगवान्‌के नामका जप—ये सभी भगवान्‌के ध्यानमें मदद करनेवाले हैं। इन सबसे मदद लेनी चाहिये और भगवान्‌की विशेष मदद है ही। उनसे समय-समयपर स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये कि हे प्रभो! बस मैं आपसे यही चाहता हूँ कि नित्य-निरन्तर मेरा भजन-ध्यान बना रहे, आपमें परम श्रद्धा, परम प्रेम होवे; बस यही मैं आपसे चाहता हूँ। सुना जाता है इस प्रकार साधन करनेसे भगवान्‌के साक्षात् दर्शन हो

जाते हैं और दर्शन होनेके बाद उनसे वियोग कभी होता ही नहीं। भगवान्‌के साथ सदा संयोग ही रहता है। इस शरीरसे कभी वियोग हो भी जावे तो मनसे कभी वियोग हो ही नहीं सकता। और सब साधन तो ध्यानमें सहायक हैं पर परमात्माका ध्यान तो साक्षात् साधन है, सब साधनोंमें प्रधान है। इससे विक्षेपका एकदम नाश हो जाता है। इसीलिये ऋषिलोग वनमें जाकर ध्यान लगाया करते थे। सत्पुरुषोंका संग, सत्शास्त्रोंका स्वाध्याय, अनुशीलन यानी एकान्तमें बैठकर उनका विचार करना—ये आवरणदोषको नाश कर डालते हैं। मलविक्षेप आवरणका नाश करना ही हमारा परम कर्तव्य है। इसीलिये ही मनुष्यका शरीर मिला है। हमलोगोंको अपनी सारी शक्ति अंतःकरणकी शुद्धिमें लगा देनी चाहिये। मलविक्षेप और आवरणके नाशमें ही अपना सारा जीवन लगा देना चाहिये। इनके नाश होनेसे मनुष्य पात्र समझा जाता है और पात्र होनेके साथ ही परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है, क्योंकि जब बिजली फिट हो जाती है फिर स्विच जलानेके साथ ही रोशनी हो जाती है। इसी प्रकार मनुष्य जब पात्र बन जाता है तो परमात्माकी प्राप्ति क्षणमात्रमें हो जाती है। अतः हमलोगोंको पात्र बनना चाहिये, सावधान रहना चाहिये, सचेत रहना चाहिये। सब शास्त्र हमें चेता रहे हैं। भक्तगण चेतावनी दे रहे हैं किंतु हमलोग ऐसी गाढ़निद्रामें सो रहे हैं कि उनके जगानेपर भी नहीं जग रहे हैं; मोह, माया, निद्रामें ऐसे तन्मय हो गये हैं कि अपने कर्तव्यको भूलकर अज्ञानमें तन्मय हो गये हैं। इसको दूर करनेके लिये ईश्वरकी शरण जाकर स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये। अपनी आत्माके कल्याणके लिये उनकी कृपाका आश्रय लेकर प्रयत्न करना चाहिये ताकि सफलता हो जावे। हमें हर वक्त खयाल रखना चाहिये कि हमारे जीवनका समय किस काममें

बीत रहा है; इसकी निगरानी रखनी चाहिये। हमारा एक क्षण भी व्यर्थ काममें जाता हो तो हमें बचना चाहिये। जो मनुष्य अपना समय धन इकट्ठा करनेमें, भोग-सामग्री इकट्ठा करनेमें लगाता है या अपने स्वार्थके लिये मकान बनानेमें या शरीर-पोषणमें या अपने कुटुम्ब-पालनमें लगाता है; वह मूर्ख है और उसका समय एकदम व्यर्थ बीतता है; क्योंकि ये सभी पदार्थ नाशवान् हैं। जब हमारा इस शरीरके साथ ही कोई सम्बन्ध नहीं है तो दूसरे पदार्थोंके साथ कैसे रह सकता है। यह समझकर अपने समयको व्यर्थ नहीं बिताना चाहिये। उपनिषदोंने भी चेतावनी दी है कि—'**उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत**' उठो, जागो और महापुरुषोंके पास जाकर जाननेयोग्य वस्तुओंको जानो। यह भी बतलाया है कि चेत जावोगे तो सत्य है नहीं तो महान् हानि है। इस प्रकारकी चेतावनी दी है। गीतामें भी कहा है—

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥

(९। ३३का उत्तरार्द्ध)

मनुष्य-शरीर यह अनित्य है, बहुत दिनोंतक रहनेवाला नहीं है परन्तु बड़ा दुर्लभ है। इसलिये इस अमूल्य शरीरको पाकर मेरा ही भजन कर—यह भगवान्ने आज्ञा दी, भक्तलोग भी कहते हैं—

दो बातनको भूल मत जो चाहत कल्याण।
नारायण एक मौतको, दूजे श्रीभगवान॥

नारायण स्वामी कहते हैं—यदि तू कल्याण चाहता है तो तुम्हें दो बात कभी नहीं भूलनी चाहिये। एक मृत्युको और दूसरे भगवान्को। भगवान्को याद रखनेसे पूर्वके पापोंका नाश होकर भगवान्में श्रद्धा-प्रेम बढ़कर भगवान्की प्राप्ति हो जाती है। और मृत्युको निकट देखनेसे नये पाप नहीं बनते; क्योंकि मृत्यु

निकट दीखती है और साधन तेज हो जाता है कि शीघ्र ही मरना है। इसलिये ये दो बातें सार रूपमें बतलायीं। दूसरा कवि कहता है—

सुत दारा अरु लक्ष्मी पापीके भी होय।
संत मिलन अरु हरि भगति दुर्लभ जगमें दोय॥

पुत्र, स्त्री, धन-रुपया—ये सब पापियोंके भी होते हैं, किन्तु संतमिलन और भगवान्‌की भक्ति ये दोनों बातें संसारमें बहुत ही दुर्लभ हैं। अतः समय सत्संगमें और ईश्वरकी भक्तिमें ही बिताना चाहिये। कबीरदासजी कहते हैं—

कबिरा नौबत आपनी दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली बहुरि न देखो आय॥

यह मानव-जीवनरूपी नगाड़ा दस दिन यानी बहुत ही अल्प समयके लिये मिला है चाहे जैसे बजा लो माने थोड़ा जीवन है मृत्युके पूर्व ही जो कुछ चाहो कर लो। अपने समयको यदि तुम बर्बाद करना चाहो तो बर्बाद कर दो, ऐसा मौका फिर नहीं मिलना है। इस शहर और गाँवकी गलियोंमें वापस लौटकर नहीं आवोगे। कबीरदासजी और भी चेतावनी देते हैं—

मरोगे मर जावोगे कोई न लेगा नाम।
ऊजड़ जाय बसावोगे छाड़ बसन्ता गाम॥

तुम निश्चय ही मरोगे। मरनेके बाद दुनियामें कोई तुम्हारा नाम भी नहीं लेगा और तुमको श्मशानभूमिमें ले जाकर जला देंगे, जिस गाँवमें बास करते हो उसको छोड़कर उजाड़में (श्मशानमें) जाकर बसोगे। इसलिये भगवान्‌का भजन करना चाहिये—

हाँड जले ज्यों लाकड़ी केश जले ज्यों घास।
सब जग जलता देखके भए कबीर उदास॥

जैसे लकड़ियाँ जलती हैं वैसे तुम्हारी हड्डियाँ जलेंगी और

जैसे घास जलती है वैसे तुम्हारे सिरके केश जलेंगे। कबीरजी इस प्रकार मुर्दोंको जलता देखकर उदास हो गये कि लोग क्यों नहीं चेतते हैं? कबीरदासजी चेतावनी दे रहे हैं कि यह दशा सभीकी होनेवाली है, सबको खयाल करना चाहिये। भगवान्‌की रटन लगानी चाहिये।

आज काल की पाँच दिन जंगल होगा बास।
ऊपर ऊपर हल फिरे ढोर चरेंगे घास॥

वर्तमान स्थिति थोड़े ही समयकी है, इसके बाद इस शरीरको मिट्टीमें ही मिल जाना है। उस मिट्टीके ऊपर हल चलेगा और पशु घास चरेंगे। अतः जीवन रहते-रहते इस शरीरका सदुपयोग यानी भगवत्प्राप्ति कर लेनी चाहिये।

आज कहै मैं काल भजूँ काल कहे फिर काल।
आज काल के करत ही अवसर जासी चाल॥

आज कहता है कि कल भजना शुरू करूँगा और कल कहता है कि फिर कल करूँगा। इस प्रकार आज-कल, कल-आज करते-करते यह तुम्हारी आयु समाप्त हो जायगी; फिर कब करोगे। इसलिये शीघ्रातिशीघ्र भगवान्‌का भजन शुरू कर देना चाहिये।

काल भजन्ता आज भज आज भजन्ता अब।
पल में प्रलय होएगी बहुरि भजेगा कब॥

यदि कलका विचार आप कर रहे हैं तो आज ही शुरू कर दीजिये, यदि आजका विचार है तो अभी शुरू कर दीजिये, क्योंकि क्षणमें जब मृत्यु आकर प्राप्त हो जायगी, फिर कब भजोगे। इसलिये शीघ्रातिशीघ्र भगवान्‌का भजन आरम्भ कर देना चाहिये।

केशव केशव कूकिए न कूकिए असार।
रात दिवस के कूकते कबहुँ तो सुने पुकार॥

हे केशव! हे केशव! इस प्रकारसे पुकार लगानी चाहिये और असार संसारके वास्ते कभी नहीं रोना चाहिये। रात-दिन यदि हम केशव-केशव पुकार लगावें, रोवें तो कभी हमारी सुनवाई हो सकती है। इसलिये रात-दिन नामकी पुकार लगानी चाहिये—

राम राम रटते रहो जब लग घटमें प्रान।
कबहूँ तो दीनदयालके भनक पड़ेगी कान॥

राम-राम रटते रहो, हर वक्त रामके नामकी रटन लगाये रहो, देहमें प्राण रहे तबतक राम-नामका जप करते रहो। इस प्रकार रात-दिन रटन करते-करते कभी तो भगवान् सुनवाई करेंगे ही। विश्वास रखना चाहिये कि अवश्य ही करेंगे।

भगवान्‌को एक क्षण कभी भी नहीं भूलना चाहिये। और काममें नुकसान हो तो होने दे किंतु अपने भजनमें कभी नुकसान नहीं होने दे। भगवान्‌को हर वक्त याद रखते हुए ही काम करनेका अभ्यास डालना चाहिये। चाहे और काममें हर्ज हो। वह हर्ज हर्ज नहीं है, यह असली हर्ज है। भगवान्‌की भक्तिमें, भजन, ध्यानमें विघ्न ही असली हर्ज है। उसमें कमी नहीं आने देनी चाहिये। चलते, उठते, बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते हर समय भगवान्‌को याद रखना चाहिये। हम चलते हैं तो मानो भगवान् साथमें चलते हैं, बैठे हैं तो भगवान् साथमें बैठे हैं, हम सो रहे हैं तो भगवान् साथमें सोते हैं, खाते हैं तो साथमें खा रहे हैं। इस तरह भगवान्‌को हर वक्त निकट देखना चाहिये। कभी भूलना नहीं चाहिये। भगवान् निराकाररूपसे तो सब जगहमें व्यापक हैं ही किंतु अपने इष्टदेवके रूपमें, सगुण-साकाररूपमें भगवान्‌को शिवके रूपमें, विष्णुके रूपमें, श्रीरामके या श्रीकृष्णके रूपमें अपने अत्यन्त निकट देखना चाहिये। जिस तरह गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्णको हर वक्त मनसे अपने निकट देखा करती

थीं। ऐसे ही भगवान्‌का हर वक्त मनसे ध्यान रखते हुए ही अपने शरीरसे चेष्टा करनी चाहिये। शरीरकी वह चेष्टा भी निष्काम-भावसे ही होनी चाहिये। जिससे लोगोंका उपकार हो, हित हो, ऐसी चेष्टा होनी चाहिये। यह हमारी उन्नतिके लिये बहुत ही उत्तम उपाय है। वे असली समझदार आदमी हैं जो उत्तरोत्तर अपनी उन्नति करते हैं। भगवान् कहते हैं—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

(गीता ६।५)

आत्माके द्वारा आत्माका उद्धार करना चाहिये। आत्माका कभी पतन नहीं करना चाहिये। आत्माका उद्धार करना क्या है? जिस कामको आप उत्तम समझते हैं उसका तो उपार्जन करना चाहिये और जिस कामको आप बुरा समझते हैं उसके नजदीक नहीं जाना चाहिये। यही अपने-आपके द्वारा अपनी उन्नति करना है। जिस कामको आप बुरा समझते हों, खराब समझते हों फिर उसी कामको करें यही आपका पतन है। यह रुकावट है कि जिस कामको आप उत्तम समझते हों उस कामको आप तत्परताके साथ नहीं करते हैं, यही विघ्न है। इन बातोंको समझते हुए जिस कामके लिये हमलोगोंका संसारमें आना हुआ उस कामको शीघ्रातिशीघ्र और तत्परताके साथ करना चाहिये। जो इस काममें हमारी मदद करता है वही हमारा मित्र है, बन्धु है। जो परमात्माकी प्राप्तिमें मदद करता है, वही हमारी स्त्री है, पुत्र है, वही हमारा है जो इस काममें हमारी मदद करता है। अगर वह मदद नहीं करे तो हमारा क्या हुआ? हमारा खास काम तो परमात्माकी प्राप्ति करना है। इसी कामके लिये मनुष्य-शरीर मिला है। जिस कामके लिये मनुष्य-शरीर मिला है उसी कामके लिये अपना समय बिताना चाहिये। इसके विपरीत कामके लिये

समय बितावें तो यह हमारी मूर्खता है। सबसे पहले इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि हमारा मन क्या कर रहा है? इसकी निगरानी रखनी चाहिये और इसका सुधार करना चाहिये। आप शरीरसे यज्ञ, दान, तप, सेवा, तीर्थ, व्रत उत्तम काम करते हैं और मन आपका साथ नहीं देता है तो वह महत्त्वपूर्ण नहीं है। मन केवल उस साधनके साथ है तो वह महत्त्वपूर्ण है। मनको समझाकर अपने काबूमें करना चाहिये। हम कोई भी क्रिया करें, वह मनसे करनी चाहिये। श्रद्धा-भक्तिपूर्वक निष्काम-भावसे करनी चाहिये। फिर शीघ्र ही उद्धार हो सकता है।

इन सबका सार यह है कि हमें हर समय सावधानीके साथ इस मनकी निगरानी रखनी चाहिये कि यह मन परमात्माको छोड़कर कहीं इधर-उधर न जावे। इस बातको काममें लावें तो सब प्रकारसे हमारी सफलता हो जावेगी—यही खास बात है। और विचार करना चाहिये कि यह मन असली काममें तो बहुत कम लगता है यानी भगवान्‌की भक्तिमें, भजनमें, वैराग्यमें कम लगता है और फालतू काममें इसका समय अधिक जाता है। इसलिये समझदार मनुष्यको यह विचार करना चाहिये, मनको समझाना चाहिये कि फालतू काममें हमारा एक क्षण भी क्यों जाय। जब ईश्वरने हमें बुद्धि दी है, विवेक दिया है, ज्ञान दिया है, तो इसका उपयोग ठीक करना चाहिये। यदि हम इसका ठीक उपयोग करें तो हमारा शीघ्र ही कल्याण हो सकता है। संसारके जितने पदार्थ हैं, विषय-भोग, ऐश, आराम, स्वाद, शौकीनी, विलासिता आदि सबको अनित्य समझकर इनसे एकदम तीव्र वैराग्य करना चाहिये, इनसे वृत्तियाँ हटानी चाहिये, प्रेम हटाना चाहिये जब प्रेम हटा लेंगे तो चित्तकी वृत्तियाँ अपने-आप ही हट जावेंगी। प्रेम हटानेका नाम ही वैराग्य है और चित्तकी वृत्तियोंको हटानेका नाम उपरति है। संसारके पदार्थोंसे जब

वैराग्य हो जायगा, हमारी परम उपरति हो जायगी और तीव्र वैराग्य हो जायगा तो अपना काम शीघ्र ही बन जायगा, कोई संदेहकी बात नहीं है। इसलिये हर वक्त हमें कोशिश करनी चाहिये। दूसरी बात यह है कि सत्पुरुषोंका संग और सत्शास्त्रोंका अनुशीलन करके और उनकी बतायी हुई बातोंको समझकर उसके अनुसार अपना जीवन बनाना चाहिये। फिर अपना काम बहुत ही शीघ्र हो सकता है। तीसरी बात है कि जिस कामके लिये हम आये हैं उस कामको शीघ्रातिशीघ्र कर लेना चाहिये। जबतक मृत्यु दूर है, शरीर आरोग्य है और देहमें प्राण है उसके पहले-पहले ही काम बना लेना चाहिये जिससे आगे जाकर हमें घोर पश्चात्ताप नहीं करना पड़े और इनसे भी बढ़कर यह है कि भगवान्के नाम और स्वरूपको हर समय मनसे याद रखना चाहिये। श्रद्धा-भक्तिपूर्वक, निष्कामभावपूर्वक उसको याद रखना चाहिये। ईश्वरकी भक्ति, भजन, ध्यानको गुप्त रखना चाहिये उसको प्रकाशित नहीं करना चाहिये। फिर अपना काम बना हुआ ही है। यह सार बात है।

नारायण! नारायण!! नारायण!!!

दुःखोंका अभाव, परम आनन्द, परम शान्तिके लिये साधन तेज करनेके लिये चेतावनी!

समय बहुत ही कम रह गया। प्रायः आयु बीत गयी। समय तो हर वक्त जा रहा है, जा ही रहा है, समय तो रुकेगा नहीं! हम जिस कामके लिये आये थे उस कामको जल्दी बना लेना चाहिये फिर संसारमें निश्चिन्त होकर विचरना चाहिये। जिस कामके लिये आये हैं अगर वह काम नहीं बनाया तो बड़ी भारी मूर्खता है क्योंकि अगर आज ही मृत्यु प्राप्त हो जाय तो हम ना नहीं कर सकते। अपना काम बना नहीं, बहुत बाकी है! ऐसी परिस्थितिमें हमलोगोंको अपने आत्मकल्याणकी चिन्ता होनी चाहिये और जो समय बीत गया उसका सच्चा पश्चात्ताप होना चाहिये। सच्चा पश्चात्ताप यही है कि आगे व्यर्थमें समय नहीं बीते। मनुष्यकी इन्द्रिय, मन, बुद्धि ही मित्र हैं और वे ही शत्रु हैं। मन और इन्द्रिय यदि जीते हुए हैं तो मित्रके समान हैं और नहीं जीते हुए हैं तो शत्रुके समान हैं। इन सबको अपने काबूमें करना चाहिये। मनुष्य-शरीर पाकर भी अगर हम अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियोंपर कब्जा नहीं कर सके तो फिर अपनी स्त्री, पुत्र, भाई-बन्धुओंपर क्या कर सकेंगे और संसारके ऊपर अधिकार जमाना तो और भी दूरकी बात है।* फिर आकर क्या किया? जैसे आजसे बीस वर्ष पहले हमको सांसारिक दुःख होता था वैसे ही अब होता है फिर क्या उन्नति की? हम सब दुःखोंका अत्यन्त अभाव करनेके लिये आये हैं। अत्यन्त अभाव तो दूर रहा, जिस प्रकार दुःख पा रहे थे वैसे ही दुःख पा रहे हैं। हमारा आनेका उद्देश्य था परमानन्द और परम

---

* यह प्रवचन गीताभवनमें आनेवाले भाइयोंके बीचमें दिया गया।

शान्तिकी प्राप्ति! वह काम तो हुआ नहीं फिर आकर क्या किया? इस शरीरका पोषण किया, इससे क्या लाभ होगा? दस सेर या आधा मन मांस और बढ़ जायगा। उसकी दो-चार सेर राख ही तो और अधिक होगी और क्या होगा? ईश्वरने हमें विवेक दिया है, बुद्धि दी है उससे विचार करना चाहिये। जैसे मदिरा-पान करके मनुष्य पागलकी तरह हो जाता है, उन्मत्त हो जाता है उसी प्रकार प्रायः लोग मायारूपी मदिराका पान करके उन्मत्त होकर संसारमें विचर रहे हैं और उनको अपना-पराया भी नहीं सूझता। विशेषकर अपना हित भी नहीं समझते। कितने शोककी बात है, बहुत ही लज्जाकी बात है, दुःखकी बात है किंतु जो समय बीत गया वह तो बीत ही गया लौटकर वापस नहीं आ सकता। अब बचे हुए समयको सार्थक बनाना चाहिये जिससे आगे जाकर हमें घोर पश्चात्ताप न करना पड़े। तुलसीदासजी कहते हैं—

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ॥

(उत्तरकाण्ड ४३)

अपनी आत्माका कल्याण नहीं करनेवालेको भविष्यमें सिर धुन-धुनकर घोर पश्चात्ताप करना होगा। वे काल, कर्म और ईश्वरके माथेपर झूठा दोष लगायेंगे। उससे क्या लाभ? लगाते रहो। कार्यकी सिद्धि तो कुछ होगी नहीं। इसलिये जबतक देहमें प्राण है, इस देहपर अपना अधिकार है, जबतक होश है, जबतक किसी घोर बीमारीने आकर नहीं घेरा है, बुढ़ापेने आकर नहीं घेरा है इसके पहले-पहले अपना काम बना लेना चाहिये। पूर्वमें असंख्य-असंख्य जन्म बीत चुके हैं, दुनियामें कोई भी ऐसा लोक नहीं जहाँ हम नहीं गये हों, ऐसी कोई योनि नहीं जिसको हम नहीं प्राप्त हुए हों। ऊपर-से-ऊपर

देवताओंकी योनि, नीचे-से-नीचे तिर्यक्-योनि यानी पशु-पक्षी आदि योनियाँ, उससे भी नीचे नरक है। इन सभी स्थानोंमें हम घूम चुके हैं। अब ये मौका भगवान्‌ने दिया है, ऐसा मौका पाकर अपनी आत्माका सुधार कर उद्धार करना ही चाहिये। चाहे कुछ भी हो जाय मनमें दृढ़ धारणा करके अपना यह काम बना ही लेना चाहिये। जिनको भगवान्‌ने मनुष्य बनाया है, उनपर विशेष दया की है, सामान्यतया तो सब जीवोंपर दया है ही परन्तु मनुष्य बनाकर भगवान्‌ने विशेष दया कर दी। बड़ा भारी मौका दे दिया। चौरासी लाख योनियोंमें घूमते-घूमते भगवान्‌की कृपासे यह मनुष्य-शरीर मिला है।

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

(उत्तरकाण्ड ४४। ६)

कभी करुणा करके भगवान् मनुष्य-शरीर देते हैं। भगवान् हेतुरहित दया और प्रेम करनेवाले हैं, उन प्रभुके मनमें चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करते हुए इस जीवको देखकर दया आ जाती है तो इसको मौका देते हैं। ऐसे मौकेको पाकर यदि हम अपनी आत्माका कल्याण नहीं कर पाये तो हमारे लिये बहुत ही लज्जा और शोककी बात है। लौकिक और पारमार्थिक सब प्रकारसे भगवान् हमारा हित ही कर रहे हैं। केवल मनुष्य-शरीर दिया ऐसी बात नहीं बल्कि मनुष्य-शरीरका जन्म, उत्तम देश भारतवर्ष—जिस भारतवर्षसे सारी दुनियाके लोग शिक्षा लिया करते थे—दिया और उत्तम कालमें जन्म हुआ कलियुगके समान कोई उत्तम समय नहीं है। इसलिये वेदव्यासजीने यह बात बार-बार कही कि—कलियुग धन्य है, कलियुग धन्य है, कलियुग धन्य है। इस विषयमें ऋषियोंने पूछा—महाराज! आपने कलियुगको धन्यवाद कैसे दिया? उन्होंने कहा कि सत्ययुगमें

ध्यान करनेसे, त्रेतायुगमें यज्ञ करनेसे, द्वापरयुगमें पूजा करनेसे जिस कामकी सिद्धि होती है, यानी अपनी आत्माका उद्धार होता है वह कलियुगमें केवल ईश्वरके नाम-कीर्तनसे ही हो जाता है। इसीलिये कलियुग सबसे बढ़कर है। दूसरी विशेष बात यह कही कि कलियुगमें अवगुण भरे हुए हैं, यह अवगुणोंकी खान है किंतु इसमें एक विशेष गुण है कि कलियुगमें जो भगवान्‌की भक्ति करता है वह तर जाता है। तीसरी यह बात विशेष कही कि सत्ययुगमें दस वर्ष साधन करनेसे, त्रेतायुगमें एक वर्ष साधन करनेसे, द्वापरमें एक महीना साधन करनेसे जो कार्यकी सिद्धि होती थी उस कार्यकी सिद्धि कलियुगमें एक दिनमें हो सकती है। यह कार्य है उस परमात्माकी प्राप्ति करना। इसलिये युग भी बड़ा अच्छा है।

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

(उत्तरकाण्ड १०३ क)

तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि कोई विश्वास करे तो कलियुगके समान कोई दूसरा युग नहीं है। मनुष्य भगवान्‌के विमल गुणोंको गाकर बिना ही परिश्रम भवसागरसे पार हो जाता है। माने संसार-सागरसे तर जाता है। हमलोगोंपर भगवान्‌की कितनी दया है कि उत्तम देश और उत्तम कालमें जन्म हुआ, उत्तम जाति और उत्तम धर्ममें—अपने वैदिक सनातन धर्म जैसा कोई धर्म नहीं है—ऐसे धर्मके माननेवाले पुरुषोंमें जन्म हुआ तथा समय-समयपर हमलोग यत्किंचित् सत्संग और स्वाध्याय करते ही हैं। हमलोगोंपर सब प्रकारसे भगवान्‌की दया हो गयी। इतनी दया होनेपर भी हम अपनी आत्माका कल्याण नहीं करें तो हमारे लिये बहुत ही लज्जा और शर्मकी बात है—

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

(उत्तरकाण्ड ४४)

जो पुरुष इन सब सामग्रियोंको पाकर भी भवसागरके पार नहीं उतरता है वह मूर्ख है, निन्दाके योग्य है और आत्महत्या करनेवालेकी दुर्गतिको प्राप्त होता है। इन सब बातोंपर ध्यान देकर अपनी सारी शक्ति इसी काममें लगा देनी चाहिये। अपना जो बल है, बुद्धि है, अपने पासमें जो रुपया है यानी तन, मन, धन, जन सब इस काममें लगा दें। यदि गफलतमें रहोगे तो उसका नतीजा खराब होगा। इस बातको सोचकर तेजीके साथ साधन करना चाहिये, ऐसा मौका बार-बार मिलनेका नहीं। प्रथम तो मनुष्यका शरीर ही बार-बार मिलना सम्भव नहीं है और वह मिल भी गया तो न जाने किस देशमें, जातिमें जन्म हो उसका भी कोई ठिकाना नहीं। जब ईश्वरने इतनी कृपा की है तो उससे लाभ उठाना चाहिये।

मनुष्यका जन्म मिला है जल्दीसे परमात्माकी प्राप्ति करनेके लिये। इससे सारे दुःखोंका, सारे क्लेशोंका, सारे पापोंका, आलस्य, प्रमाद इन सबका एकदम विनाश हो जाता है। दुर्गुण और दुराचारोंका भी एकदम विनाश हो जाता है तथा सद्गुण और सदाचार अपने-आप ही आ जाते हैं। ईश्वरकी भक्तिके प्रभावसे ज्ञान, वैराग्य, शक्ति, परमशान्ति, परम आनन्दकी प्राप्ति हो जाती है एवं हमलोग जबतक जीते हैं तबतक परमात्माकी प्राप्ति असम्भव नहीं है। परमात्माकी प्राप्ति बहुत ही सुगम बतलायी है। कर्मयोग, ज्ञानयोग या भक्तियोगके द्वारा—इनमें जिसकी मरजी हो उसीके अनुसार साधन करके अपना काम बनाना चाहिये।

तूँ कछु और विचारत है नर तेरो विचार धर्योहि रहैगो।
भोर कि साँझ घरी पल माँझ सु, काल अचानक आइ गहैगो॥

तू कुछ और ही विचार करता है, तेरे विचार यहीं धरे रह जायँगे, मृत्यु यानी कालदेवता आज या कल, घड़ी या पलमें आकर पकड़नेवाला है फिर कुछ नहीं होनेका है। जैसे कोई सिखाया हुआ तोता-मैना राम-राम कहता है, कोई 'राधाकृष्ण', 'राधाकृष्ण' रटता है परंतु जब उसको बिडाल आकर पकड़ता है उस समय 'टाँय-टाँय' करता है और सब भूल जाता है। इसी प्रकार हम नाचते, गाते, बजाते फिरते हैं परंतु जब काल आकर पकड़ेगा तब यह सब भूल जायँगे। अतएव हमलोगोंको ऐसी कोशिश करनी चाहिये जिससे हम कालके फंदेमें फँसकर संसारमें कभी न भटकें। जिस सांसारिक सुखके लिये हम कोशिश कर रहे हैं वह संसारका सुख तो उस आनन्दसागर परमात्माके सुखके मुकाबलेमें बूँदके समान भी नहीं है। एक बूँद भी होवे तो भी मान लें। सांसारिक अल्प सुख नाशवान् है, मिथ्या है, परमात्मविषयक आनन्द सच्चा है। सत्यको छोड़कर मिथ्याका सेवन करनेवालेके लिये सत् वस्तुका भी अभाव हो जाता है, मिथ्या तो मिथ्या है ही। यह विचार करना चाहिये कि मृत्यु होनेके साथ ही इन रुपयोंसे, कुटुम्बसे, हमारे प्यारे मित्रोंसे, किसीसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहेगा। और बात तो दूर रही, इस शरीरसे भी कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। फिर हमको यह विचार करना चाहिये कि अपने अमूल्य जीवनका हम एक क्षण भी बर्बाद क्यों करें, मिट्टीमें क्यों मिलावें। परमात्माको छोड़कर किसी भी काममें अपना समय लगाना धूलमें मिलाना है, मिट्टीमें मिलाना है। आपलोग विचार लें, ईश्वरने आपको बुद्धि दी है, विवेक दिया है, पिछले जन्ममें हमने कुटुम्ब कहाँ छोड़ा

है, खयाल नहीं है, किसीसे कोई सम्बन्ध ही नहीं। इसी प्रकार यहाँसे भी जानेके बाद इस कुटुम्बसे, स्त्री, पुत्रसे किसीके साथ किंचित्मात्र भी अपना सम्बन्ध नहीं रहेगा। फिर कुटुम्बका पोषण करनेके लिये अपना समय लगाना तो मूर्खता है और इसका भरण-पोषण भगवान् करते ही हैं इसकी चिन्ता भी हम क्यों करें? और रुपये, पैसे, मकान, सम्पत्ति आदि यहीं रह जायगी, यहीं छोड़कर जाना पड़ेगा। रात और दिन इसका संग्रह करना बड़ी भारी मूर्खता है। साथमें पाँच पैसे भी नहीं जा सकते। धनको जोड़ना, इकट्ठा करना बड़ी भारी भूल है, परमात्माकी प्राप्तिसे वंचित होकर अपने समयको नष्ट करना है। अपनेको तो ऐसा विचारना चाहिये कि प्रारब्धवश चाहे स्त्री मरे, पुत्र मरे, चाहे कुटुम्बका नाश हो, चाहे शरीरका नाश हो, चाहे बीमार हों—ये सब पदार्थ नाशवान् ही हैं। इन सबका नाश तो होना ही है। इनको कौन रोक सकता है। ऐसा समझकर इनकी चिन्ता-फिकर करे ही नहीं। इनसे हजार कोस दूर रहे, अपना क्या सम्बन्ध है, क्या लेना-देना है, चाहे कोई मरे, कोई जीवे। कहनेका अभिप्राय यह है कि लाख काम छोड़कर जिस कामके लिये हमलोग आये हैं उस काममें ही अपना समय लगाना चाहिये, यही बुद्धिमत्ता है। उसको छोड़कर दूसरे काममें एक क्षण भी, एक पल भी लगाना बड़ी भारी भूल है। अभी पता नहीं चलता, आगे जाकर इसके लिये पश्चात्ताप करना पड़ेगा। जब हमें पहले ही ज्ञान हो गया तो ऐसा काम हम क्यों करें? कमर कसकर निश्चय करके इस बातके लिये तत्पर हो जाना चाहिये। मनुष्य-शरीर परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही मिला है इसलिये अब तो परमात्माकी प्राप्ति करके ही छोड़ेंगे, चाहे मर भले ही जायँ। अगर

परमात्माकी प्राप्तिके लिये मरे तो हमारा जीवन परमात्माके ही तो अर्पण हुआ। मरनेमें भी आनन्द, यह शरीर रह करके भी क्या करेगा।

ये जितने पदार्थ हैं सब यहीं रह जायँगे। फिर हमको क्या करना चाहिये? शरीरके रहते-रहते उस परमात्माको प्राप्त कर लेना चाहिये। अपना मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, शरीर और सब पदार्थोंको इस काममें लगा देना चाहिये। इन्द्रियोंसे भगवान्की सेवा, वाणीसे जप, मनसे भगवान्का ध्यान, बुद्धिसे निश्चय और शरीरसे भी सेवा। सबमें भगवान् समझकर सबकी हँस-हँसकर प्रेमसे सेवा करे। जब यह निर्णय हो चुका कि कोई भी पदार्थ हमारे साथ नहीं जा सकते, फिर समझना चाहिये कि हम अपने समयको फालतू काममें क्यों बितावें? अब यह विचार करना चाहिये कि मरनेके समय क्या चीज साथ जाती है। यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि जो आदमी मर जाता है, मुर्दा है उसमें मन नहीं है, बुद्धि नहीं है, अहंकार नहीं है और इन्द्रियोंकी शक्ति नहीं है। इन्द्रियोंके स्थानमें जो इन्द्रियाँ थीं वह नहीं हैं, उससे क्या निकल जाता है—प्राण निकलकर जाते हैं। लोग कहते हैं कि प्राण निकल गये यानी यह मर गया। प्राणमय शरीरको सूक्ष्म शरीर कहते हैं उसीके अंदर इन्द्रियाँ हैं। इन्द्रियोंके अंदर मन है और मनके अंदर बुद्धि है, बुद्धिके अंदर यह आत्मा है। इस प्रकार इन सबको लेकर यह जीवात्मा कहलाता है। कहनेका भाव यह है कि अपनी जो इन्द्रियाँ अपने अधिकारमें हैं। इनसे खूब काम लेना चाहिये और इनको एकदम शुद्ध करना चाहिये। ऐसे ही बुद्धिको भी शुद्ध बनाना चाहिये और इनसे खूब काम लेना चाहिये। अगर हम इन्हें अपने नहीं बना सके तो फिर मनुष्योंमें और पशुओंमें फरक ही क्या रहा?

भोजन तो पशु भी करते हैं, हम भी करते हैं, रातमें पशु भी सोते हैं, हम हैं, हम भी सोते हैं, मनुष्य भी मैथुन करते हैं, पशु भी करते हैं, पक्षी भी करते हैं। फिर पशु-पक्षियोंकी अपेक्षा हमारेमें क्या विशेषता हुई? अपने मनको वशमें करना चाहिये, शुद्ध बनाना चाहिये। निर्दोष माने पापोंसे रहित बनाना चाहिये। हृदयमें जो दोष भरे हुए हैं उनको दूर करना चाहिये। हृदयमें और बुद्धिमें ज्ञान और विवेक भरना चाहिये। क्षमा, दया, शान्ति, समता, संतोष, सरलता आदि दैवी संपदाके जितने लक्षण, जितने गुण हैं—गीताके सोलहवें अध्यायमें १ से ३ श्लोकमें जो दैवी संपदाके २६ लक्षण बतलाये हैं उनको अपनेमें कूट-कूटकर भरना चाहिये। यह चीजें हमारे साथ जा सकती हैं। चंचल मनको स्थिर बनाना चाहिये, अपने काबूमें करना चाहिये और विषयभोगोंसे हटाना चाहिये। पहले हमलोगोंको यह कोशिश करनी चाहिये कि हमलोगोंका जीते-जी इसी शरीरमें कल्याण हो जाये और यदि जल्दी मृत्यु आ जाये तो मरणके समय तो कल्याण हो ही जाय। इसके लिये विशेष प्रयत्नवान् होना चाहिये और इसमें भी यदि फेल हो जाय तो स्वर्गसे पीछा छुड़ाकर आप्त पुरुष या महात्मा पुरुषके घरमें योगभ्रष्टकी तरह जन्म लेना चाहिये।

भगवान्‌की खूब भक्ति करके यदि भगवान् खुश हों तो उनसे ही वरदान माँगना चाहिये कि प्रभो! मेरा मन आपकी अनन्य भक्तिमें, अनन्य प्रेममें और आपके भजन-ध्यानमें लगे। अन्यथा मेरी ये अपवित्र इन्द्रियाँ इसी रूपसे दूसरे शरीरमें जायँगी। मन अपवित्र है, बुद्धि अपवित्र है, इसी अपवित्रताको लेकर जायगी। यदि इसी जन्ममें हमने उन्हें शुद्ध कर लिया तो दूसरे जन्ममें जन्म लेते ही

उद्धार हो जायगा। जैसे नेत्र इन्द्रियाँ हैं इससे हम दोष दर्शन करते हैं, इसका सुधार करना चाहिये, इसको शुद्ध करना चाहिये। बुद्धि पवित्र बनानी चाहिये, मनको पवित्र बनाना चाहिये, दूसरी स्त्रियोंको माता-बहनके समान समझना चाहिये—

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः॥

दूसरी स्त्रीको माताके समान, दूसरेके धनको धूलके समान, मिट्टीके समान, दूसरेकी आत्माको अपनी आत्माके समान जो समझता है वही पण्डित है, ज्ञानी है, महात्मा पुरुष है। ये लक्षण महात्माओंके बतलाये हैं। ऐसा बनना बहुत ही सुगम बतलाया है। बहुत-से उपाय बतलाये हैं, उनमेंसे कोई एक भी कर लेवे, गीतामें बहुत-से श्लोक बतलाये गये हैं, उनमेंसे चुनकर कोई एक ऐसा श्लोक निकाल लेवे जिनके अनुसार साधन करनेके साथ ही कल्याण हो जावे। नेत्रोंसे प्रिय दर्शन करना चाहिये। भगवान्‌की मूर्तिका दर्शन, भगवान्‌के चित्रका दर्शन, महापुरुषों और भक्तोंका दर्शन, अच्छी पुस्तकोंका पढ़ना इस काममें नेत्रोंको लगाना चाहिये और इसके विपरीत करना ही मूर्खता है। वही चीजें मरनेके बाद हमारे साथ चलेंगी। इसी प्रकार हमारा कान फोनोग्रामके समान है। इसमें बढ़िया-बढ़िया शब्द भरने चाहिये, भगवान्‌के नामका कीर्तन भरना चाहिये, भगवान्‌के उपदेश भरने चाहिये, बढ़िया-बढ़िया बातें सुननी चाहिये, ऐसी बातें जो भक्ति, ज्ञान, वैराग्यको पैदा करनेवाली हों। अपने हृदयमें ज्ञान, वैराग्य और भक्तिको स्थान देना चाहिये। पहलेका जो कूड़ा-करकट इकट्ठा हुआ है उन सबको भस्म कर डालना चाहिये। भगवान्‌के भजनसे भी भस्म हो जाता है और ज्ञानसे भी भस्म हो जाता है। भगवान्‌से यही प्रार्थना करनी चाहिये कि हे प्रभो! सत्संग और साधन, (भजन, ध्यानका साधन)—ये दो ही चीजें

आपसे माँगी जाती हैं। महाभारतमें एक कथा आती है। राजा ययातिको जब स्वर्गसे गिराया जा रहा था तब इन्द्रने साफ कह दिया कि तुमने अपनी बड़ाई की और दूसरोंका तिरस्कार किया। इसी कारण तुम्हारे सारे पुण्य नष्ट हो गये, अब तुम यहाँसे विदा होओ। उसको वहाँसे गिरा दिया। जब गिराने लगे तो उन्होंने एक प्रार्थना की कि यदि आप गिराते हो तो सत्संगमें गिराइये। उन्होंने राजा ययातिको जहाँ सत्संग होता था वहाँ गिराया। उस जगह बहुत-से राजर्षि थे, उनके दौहित्र भी थे जो उच्च कोटिके अच्छे राजर्षि थे। उनके साथ वार्तालाप होनेसे राजा ययाति फिर स्वर्गको चला गया। परन्तु हमें सत्संग सुनकर स्वर्गमें जानेकी कोशिश नहीं करनी है, भगवान्को प्राप्त करनेकी, भगवान्के निर्गुण-निराकार-स्वरूपमें प्रवेश कर जाने की या सगुणस्वरूपमें भगवान्के निजधाममें भगवान्के समीप जाकर हम बस जावें और निष्कामभावसे भगवान्की सेवा करें, प्रेम करें, आपसमें विनोद करें—यह कोशिश करनी चाहिये। मन, बुद्धि और इन्द्रियोंमें, जो कूड़ा-करकट भरा हुआ है उसे एकदम साफ कर देवें। घरको साफ कर देवें। उसके बदले इन्द्रियोंमें, मनमें, बुद्धिमें उत्तम गुण भरने चाहिये। कानोंसे बढ़िया-बढ़िया बातें सुननी चाहिये। किसीकी निन्दा नहीं सुननी चाहिये, खराब बातें नहीं सुननी चाहिये। गंदी, अश्लील और फालतू बातें नहीं सुननी चाहिये, क्योंकि वे भीतर जाकर संस्काररूपसे प्रवेश कर जायँगी तो हम जहाँ भी जायँगे वे बातें या संस्कार हमारे साथ ही रहेंगी। इस कूड़े-करकटको ले जाकर क्या करेंगे। जैसे यह टेपरिकार्डर है इसमें जो शब्द बोले जाते हैं वे ही शब्द भर जाते हैं, फिर उसको कितनी ही दूर ले जाकर यह कैसेट चला देवे तो जैसा मैं बोल रहा हूँ ठीक वैसा ही ये बोलेगी। जो भरी जायगी वही बोली जायगी। इसमें भरनेका

एक द्वार है किंतु हमारे दो द्वार हैं। उसके भीतर शब्द भरे जाते हैं। जैसे शब्द भरे जायँगे भरनेके बाद हम जहाँ भी जायँगे वह हमारे साथ जायँगे। कैमरेका जो आईना होता है उसके सामने जैसा दृश्य होता है उसी प्रकार उसमें संस्कार आ जाते हैं। हमारे यहाँ दो कैमरे लगे हुए हैं। ये दो नेत्र कैमरे हैं या कैमरेके आईने हैं। कैमरेमें तो एक ही आईना रहता है। अपने तो दो आईने हैं, एक नष्ट भी हो जाय तो दूसरेमें भरे जाते हैं नहीं तो दोनोंमें भरे जाते हैं। जैसा दृश्य हमारे सामने आता है वैसा फोटो उतर जाता है। इसलिये नेत्रोंके सामने अच्छा दृश्य रहना चाहिये। इसी प्रकार हमारी सारी इन्द्रियोंके सामने अच्छा विषय रहना चाहिये, जिसके संसर्गसे हमारा इसी लोकमें कल्याण हो जावे, अन्यथा अन्तकालमें तो हो ही जावे। हम सारी इन्द्रियोंको भगवान्की भक्तिमें लगा दें तो बेड़ा पार है। सबमें नारायणका स्वरूप समझकर हाथोंसे सबकी सेवा करें, नेत्रोंसे सर्वत्र भगवान् समझकर भगवान्के स्वरूपका दर्शन करें यानी भगवान्के स्वरूपकी भावना करें, कानोंसे भगवान्की बातें सुनें, वाणीसे भगवान्की बातें कहें और चरणोंसे तीर्थोंमें जाकर तीर्थसेवन करें। तीर्थोंमें जाकर स्नान करें, देवताओंका दर्शन करें, महात्माओंका दर्शन करें इसीलिये ये पैर मिले हैं। हम सारी इन्द्रियोंका उपयोग ठीक करें। मन-ही-मन विचार करते रहें कि मानो भगवान्से बात कर रहे हैं, भगवान्का दर्शन कर रहे हैं, भगवान्से मिल रहे हैं, भगवान्का स्पर्श कर रहे हैं, भगवान्से अच्छी गन्ध ले रहे हैं, भगवान्का प्रसाद पा रहे हैं। मनमें भगवान्को बसा लेवे, बुद्धिमें भगवान्का निश्चय कर लेवे। बुद्धिमें ऐसा निश्चय कर ले कि भगवान् निश्चय ही सब जगह सदा-सर्वदा हैं। इसी निश्चयके अनुसार भगवान्के स्वरूपका ध्यान करे और संसारमें जितने उत्तम गुण हैं उनका सेवन करे, उत्तम आचरणोंका सेवन

करे, जो मुक्तिको देनेवाले हैं, परमात्माकी प्राप्ति करानेवाले हैं। दूसरे मार्गमें जावे ही नहीं। जैसे लोभी आदमी जिस काममें आमदनी होती है वही काम करता है और जिसमें रुपया नहीं मिले उस कामके नजदीक ही नहीं जाता। इसी प्रकार सारी इन्द्रियाँ भगवान्‌के काममें लगा दे तो यहीं भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है कदाचित् मृत्यु जल्दी हो जावे, यहाँसे विदा होना पड़े तो यह सब सामग्री हमारे साथ चलेगी। फिर यदि दूसरा जन्म लेना पड़े तो जन्म लेनेके साथ ही जल्दी कल्याण हो जाता है। सर्वत्र भगवान्‌का दर्शन करे, वस्तुमात्रको, पदार्थमात्रको भगवान्‌का स्वरूप, चेष्टामात्रको भगवान्‌की लीला समझे। इसे समझनेमें और माननेमें क्या लगता है। प्रभुसे प्रार्थना करे कि हे प्रभु! हम जब घूमते-फिरते हैं तो आप ऐसा समझें कि आपकी परिक्रमा करते हैं, हम बोलते हैं तो आप ऐसा समझें कि हम आपके स्तोत्रका पाठ कर रहे हैं, हम देख रहे हैं तो प्रभु आप यह समझें कि ये मेरे स्वरूपका ही दर्शन कर रहे हैं, हम सुन रहे हैं तो यह समझें कि हम आपके गुणानुवाद सुन रहे हैं, हम हाथसे जो भी कुछ कर रहे हैं तो आप यह मान लें कि ये हमारी ही सेवा कर रहे हैं, इतना कहना ही नहीं, इस प्रकारसे समझकर करना चाहिये। अपने मनमें यह निश्चय करना चाहिये कि अपने नेत्रोंसे भगवद्विषयक पुस्तक पढ़नी या महापुरुषोंसे मिलकर उनका दर्शन करना बस अपने नेत्रोंको भगवान्‌के काममें लगा देवे, दूसरे काममें तो लगाना ही नहीं। कानोंसे दूसरी बात सुननी ही नहीं, वाणीसे दूसरी बात कहनी ही नहीं, हाथोंसे भगवान्‌की सेवाके सिवा दूसरा काम करना ही नहीं; क्योंकि सबमें भगवान् विराजमान हैं, इसीलिये सबकी सेवा ही भगवान्‌की सेवा है। अपने ऐसा सोच-समझकर, विचारकर अपना समय भगवान्‌की सेवामें ही बिताना चाहिये, भगवान्‌की भक्तिमें ही बिताना चाहिये

दूसरे काममें नहीं बिताना—यह निश्चय कर लेना चाहिये। एक कहानी है—एक आदमी मर गया उसको म्युनिसपैलिटीवालोंने उठाकर नदीमें फेंक दिया। तैरता-तैरता नदीके किनारे लग गया, नदीने उसको कहीं जंगलमें फेंक दिया। उस जगह एक सियार रहता था। रात्रिके समय सियार निकलकर आया और उसके पैरोंको खाने लगा तब आकाशवाणी हुई कि तुम इसके पैरोंको नहीं खाना, यह बड़ा भारी कृतघ्न है, इसके पैर बड़े अपवित्र हैं, इसने पैरोंसे कभी तीर्थ नहीं किया, ये खानेके योग्य नहीं हैं। फिर वह हाथ खाने लगा तो आकाशवाणी हुई कि इसके हाथ भी खानेलायक नहीं हैं क्योंकि इसने अपने हाथसे न तो कभी दान दिया, न कभी उपकार किया, न कभी सेवा की, न किसीकी पूजा की इसलिये ये हाथ बड़े अपवित्र हैं, इनको क्यों खाते हो; तुम्हारी बुद्धि भी खराब हो जायगी। हाथ खाना भी छोड़ दिया। जब वह नेत्र खाने लगा तो आकाशवाणी हुई कि इसके नेत्र भी खानेलायक नहीं हैं, क्योंकि इसने नेत्रोंसे कभी धार्मिक पुस्तक नहीं पढ़ी, न ही नेत्रोंसे तीर्थोंमें जाकर या और कहीं भगवान्‌के दर्शन किये। न नेत्रोंसे कभी किसीको अच्छे भावसे देखा इसलिये नेत्र भी बड़े अपवित्र हैं। यह बुरी दृष्टिसे स्त्रियोंको देखा करता था। इसलिये इसके नेत्र खानेयोग्य नहीं हैं। तब वह उसके कलेजेको खाने लगा तो आकाशवाणी हुई कि इसका कलेजा तो महान् अपवित्र है। इसने तो कलेजेमें पाप ही इकट्ठा किया है। इसने न तो कभी भगवान्‌का ध्यान किया न कभी हृदयमें उत्तम गुणोंका संग्रह किया। इसने तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, राग, द्वेषादिका संग्रह किया है। इसका हृदय तो पापमय है इसमें पाप-ही-पाप भरा हुआ है, यह तो खानेके लायक है ही नहीं। वह जिह्वाको खाने लगा तो फिर आकाशवाणी हुई कि इसकी जिह्वा भी खानेलायक नहीं है;

क्योंकि इसने जिह्वाके द्वारा लोगोंको गालियाँ दीं, निन्दा की। यह तो महान् अपवित्र है। इसने कभी जिह्वासे भगवान्‌का नाम नहीं लिया, कभी भगवान्‌के स्तोत्रोंका पाठ नहीं किया, कभी भगवान्‌की स्तुति नहीं की, इसकी जिह्वा भी खानेलायक नहीं है। अब उसका मस्तक खाने लगा, तब पुनः आकाशवाणी हुई कि इसका मस्तक भी कामका नहीं है। इसने अपने मस्तकको कभी भी देवताओंके लिये, महात्माओंके लिये, ईश्वरके लिये या अन्य किसीके लिये नहीं झुकाया। इसका मस्तक जहाँ रुपया मिला करता, वहीं झुका करता या वहाँ खुशामद करता और राजकीय अधिकारियोंके चरणोंमें झुकाता या जहाँ स्वार्थ होता वहाँ झुकाता, इसलिये यह भी किसी कामका नहीं है। आखिरमें आकाशवाणीने कह दिया कि इसकी कोई भी चीज कामकी नहीं है। इसलिये सियार भी उस मुर्देको बिना खाये ही वहाँसे चला गया। पापीका शरीर भी कामका नहीं रहता। पापीका शरीर पापका पुंज है। पापमय है, वह तो भक्षण करनेके लायक नहीं है। कृतघ्न गौतमकी कथा महाभारतके शान्तिपर्वमें आती है। उसको एक राक्षसने मार डाला था और मारकर उसकी बोटी-बोटी राक्षसोंमें बाँट दी और कहा कि तुम खा लो। राक्षसोंने कहा—यह कृतघ्न है इसका मांस खानेसे हम भी कृतघ्न हो जावेंगे। आप हमें देशसे निकाल दो, आपका देश छोड़ देंगे, राज्य छोड़ देंगे किंतु कृतघ्नीका मांस नहीं खायेंगे। राक्षसोंने भी उसका मांस नहीं खाया। संसारमें जो पुरुष पापी हैं, जिनका शरीर पापमय है उनका भक्षण करके राक्षसोंकी बुद्धि खराब हो जाती है। यह समझकर अपनेको कभी भी किंचिन्मात्र भी पाप नहीं करना चाहिये। किसी समयमें, किसी देशमें, किसी कालमें पाप करना ही नहीं चाहिये। हिंसा, चोरी, झूठ, कपट, बेईमानी, व्यभिचार या किसी भी प्रकारका पाप अपने नहीं करना चाहिये,

उससे दूर, बचकर रहना चाहिये और अपना सारा जीवन उच्च-से-उच्च काममें लगाना चाहिये। ईश्वरकी भक्ति, सदाचार, परमात्मविषयक ज्ञान, संसारसे वैराग्य, परमात्मामें प्रेम, सत्पुरुषोंमें प्रेम, सत्संग करना, स्वाध्याय करना इस प्रकार अपने समयको बिताना चाहिये। उत्तम गुण, उत्तम आचरण, ज्ञान, वैराग्य और भक्ति आदि जो मुक्तिको देनेवाले पदार्थ हैं; वे ही असली धन हैं। उनका संग्रह करना चाहिये और ये संसारके विषय-भोग इत्यादि तो पापियोंके भी होते हैं इसमें क्या है?

सुत दारा अरु लक्ष्मी पापीके भी होय।
संत मिलन अरु हरि भगति दुर्लभ जगमें दोय॥

स्त्री, पुत्र और धन ये तो पापियोंके भी होते हैं। ईश्वरकी भक्ति और सत्संग यह दो ही बात जगमें दुर्लभ है। इसीलिये अपना सारा जीवन सत्संगमें, सत्पुरुषोंका संग नहीं मिले तो सत्शास्त्रोंके अवलोकनमें और ईश्वरकी भक्तिमें ही बिताना चाहिये। इससे ज्ञान और वैराग्यकी उत्पत्ति होनेसे आत्माका उद्धार सहजमें ही हो सकता है।

नारायण! नारायण!! नारायण!!!

कर्मयोगका स्वरूप और उसके द्वारा परमात्माकी प्राप्ति

'कर्मयोग' से अन्तःकरण शुद्ध हो सकता है, कर्मयोगसे ज्ञानकी प्राप्ति अपने-आप ही हो सकती है तथा परमगतिकी प्राप्ति, साक्षात् परमात्माकी प्राप्ति, अनामय पदकी प्राप्ति हो सकती है। और किसी चीजका आश्रय लेनेकी जरूरत नहीं है, केवल कर्मयोगसे परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। कर्मोंमें और उसके फलमें समभावका नाम है कर्मयोग। '**सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।**' (गीता २। ४८) कार्यकी सिद्धि और असिद्धिमें समताका नाम योग है। भगवान् यह आज्ञा दे रहे हैं—

'योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।

हे धनंजय! योगमें स्थित होकर और आसक्तिको त्यागकर तू कर्मोंको कर।

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये॥

(गीता ५। ११)

निष्काम कर्मयोगी इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीरद्वारा आत्माकी शुद्धिके लिये आसक्तिको त्यागकर कर्म करते हैं।

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते॥

(गीता ५। १२)

कर्मयोगी कर्मोंके फलका त्याग करके भगवत्प्राप्तिरूप शान्तिको प्राप्त होता है और सकामी पुरुष कामनाकी प्रेरणासे फलमें आसक्त होकर बँधता है। इसमें आत्माकी शुद्धि और

परमशान्तिकी प्राप्ति केवल कर्मयोगसे बतलायी। परमात्माकी साक्षात् प्राप्ति और परमशान्तिकी प्राप्ति एक ही है। और भी कहते हैं—

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥

(गीता ३। १९)

इसलिये हे अर्जुन! आसक्तिसे रहित होकर अच्छी प्रकारसे तू कर्म कर। क्योंकि अनासक्तभावसे आचरण करनेवाला परम पुरुष परमात्माको प्राप्त हो जाता है। इससे परमात्माकी प्राप्ति साफ कही। और—

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे॥

(गीता १३। २४)

कितने ही योगीजन उस परमात्माका अपने हृदयमें बुद्धिद्वारा साक्षात्कार करते हैं, कितने ही ज्ञानयोगके द्वारा साक्षात्कार करते हैं और कितने ही कर्मयोगके द्वारा यानी निष्काम कर्मयोगके द्वारा उस परमात्माका साक्षात् अपने हृदयमें अनुभव करते हैं।

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति॥

(गीता ५। ५)

परमात्माका जो परमधाम सांख्ययोगके द्वारा प्राप्त किया जाता है वही कर्मयोगके द्वारा भी प्राप्त किया जाता है। कर्मयोगका जो फल है, ज्ञानयोगका भी वही फल है—इसलिये सांख्य और ज्ञानयोगका फल एक होनेसे इन दोनोंको जो एक जानता है, एक समझता है, एक देखता है वही ठीक देखता है।

कर्मयोगसे अपने-आप ही ज्ञान हो जाता है।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥

(गीता ४।३८)

संसारमें ज्ञानके समान कोई भी पवित्र वस्तु नहीं है। उस ज्ञानको समत्व बुद्धियोगद्वारा अनुभव करता है। कैसा भी पापी क्यों न हो ज्ञानसे एकदम पवित्र हो जाता है।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥

(गीता ४।३७)

जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधनके ढेरको भस्म कर देती है, इसी प्रकार ज्ञानाग्नि सम्पूर्ण कर्मोंको भस्म कर देता है। चाहे कितने ही पाप क्यों न हों। योगसंसिद्ध साधकके हृदयमें अपने-आप ही ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है। तात्पर्य यह कि सब कुछ कर्मयोगसे प्राप्त होता है। कर्मयोगका स्वरूप है कर्मोंको निष्कामभावसे करना या कर्मोंको समत्वबुद्धिसे करना। राग-द्वेषसे युक्त विषम-बुद्धिसे भगवान् नहीं मिलते, कार्यकी सिद्धि नहीं होती। अतः राग-द्वेषरहित बुद्धि ही सबसे बढ़कर है। भाव यह है कि दुनियामें जितने प्राणी हैं सबके हितमें रत होकर सबकी निष्कामभावसे सेवा की जाय; स्वार्थ, मान-बड़ाई तथा अहंता-ममताको त्यागकर जो कर्म किया जाय वह कर्मयोग है—

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥

(गीता २।७१)

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको छोड़कर अहंता, ममता और स्पृहासे रहित होकर संसारके विषय-भोगोंमें विचरता है या कोई भी न्याययुक्त क्रिया करता है वह शान्तिको प्राप्त हो जाता

है, परमात्माको प्राप्त हो जाता है, गीतामें बहुत प्रमाण मिलते हैं। कर्मयोगकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी थोड़ी है। कर्मयोगके विषयमें बतलाया है कि सांख्ययोगसे कर्मयोग सुगम होनेके कारण श्रेष्ठ है।

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते॥
ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते॥

(गीता ५। २-३)

कर्मोंका संन्यास अर्थात् मन, इन्द्रियों और शरीरद्वारा होनेवाले सम्पूर्ण कर्मोंमें कर्तापनका त्याग और निष्काम कर्मयोग अर्थात् समत्वबुद्धिसे भगवदर्थ कर्मोंका करना यह दोनों ही परम कल्याणके करनेवाले हैं, परन्तु उन दोनोंमें भी कर्मोंके संन्याससे निष्काम कर्मयोग साधनमें सुगम होनेसे श्रेष्ठ है। जो न द्वेष करता है, न कुछ आकांक्षा करता है उस कर्मयोगीको नित्यसंन्यासी समझना चाहिये। कर्मयोगी होते हुए भी वह संन्यासी है। राग हो तो कामना करे। उसमें आसक्ति ही नहीं है तो कामना कैसे होगी। हे महाबाहो! सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय, शीत-उष्ण—ये सब द्वन्द्व हैं। ऐसा द्वन्द्वरहित पुरुष सुखपूर्वक बन्धनोंसे छूट जाता है। तात्पर्य, कर्मयोगके द्वारा परमात्माकी प्राप्ति शीघ्र हो जाती है। किंतु कर्मयोगके साधे बिना ज्ञानयोगसे सिद्धि कठिन है और कर्मयोग बिलकुल स्वतन्त्र है।

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति॥

(गीता ५। ६)

सांख्ययोग यानी कि संन्यासकी प्राप्ति योगके बिना कठिन

है और निष्काम कर्मयोगसे मुक्त मुनि ब्रह्मको शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है। तात्पर्य कर्मयोगसे ब्रह्मकी प्राप्ति शीघ्र ही हो जाती है। विलम्ब नहीं होता और कर्मयोगसे सारे पाप भस्म हो जाते हैं। कर्मयोगसे स्वत: अपने-आप ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है। कर्मयोगसे अपने-आप ही परमधामकी प्राप्ति हो जाती है। शान्तिकी प्राप्ति हो जाती है, कर्मयोगसे साक्षात् परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है— ये सारी बातें भगवान्ने गीतामें कूट-कूटकर भर रखी हैं। दूसरे अध्यायके चालीसवें श्लोकसे लेकर तीसरे अध्यायके अन्ततक केवल कर्मयोग-ही-कर्मयोग है। कर्मयोगके तत्त्वको भगवान्ने अर्जुनको विस्तारसे समझाया है। दुनियामें अपनेको जो भी क्रिया करनी हो वह क्रिया ऐसी होनी चाहिये जिसमें दूसरेका परम हित हो, अपना कोई स्वार्थ नहीं हो। हमारी क्रिया स्वार्थरहित होनी चाहिये और सबके साथ समभाव रखना चाहिये। मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाकी इच्छाका भी अभाव हो जाना चाहिये। और मैं निष्कामी हूँ इस प्रकारका अभिमान नहीं होना चाहिये क्योंकि अभिमान भी कलंक है। द्वन्द्वोंसे रहित हो जाना चाहिये। ऐसा द्वन्द्वोंसे रहित पुरुष परमात्माको शीघ्र ही पा लेता है। उसकी कसौटी है कर्मोंमें राग-द्वेषका अभाव होकर एकदम समभाव होना चाहिये और उसमें स्वार्थका त्याग होना चाहिये। निष्कामभाव एकदम निष्काम होना चाहिये। रुपयोंके स्वार्थका त्याग, आरामका त्याग तो मोटा त्याग है, इससे सूक्ष्म त्याग है— मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाका त्याग। मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाकी इच्छा नहीं रखकर निष्कामभावसे लोगोंकी सेवा करनी चाहिये। जैसे कहीं बाढ़ आ गयी तो दल-बलके सहित बहुत-से आदमीको साथ लेकर जायँ और यह सोचें कि यहाँके प्राणियोंको किस प्रकार सुख पहुँचे। गायों, बछड़ा-बछियाको घासके द्वारा, दाना-

पानीके द्वारा सुख पहुँचाना चाहिये और मनुष्योंको अन्न-वस्त्रके द्वारा सुख पहुँचाना चाहिये।

एक भाई दस हजार रुपया लेकर बाढ़पीड़ितोंको दान देनेके लिये गया और दूसरा भाई लोगोंको सुख पहुँचानेके लिये लागतभावसे अन्न और वस्त्र बेचनेके उद्देश्यसे १०,००० रुपया लेकर गया, दान देनेके लिये नहीं। ऐसा व्यक्ति १०,००० का सामान ले जाता है। उसे बेचकर फिर १०,००० का माल ले जाता है फिर उसको बेचकर १०,००० का माल ले जाता है। अन्य लोग जहाँ बाढ़ आ गयी और भूकम्प आ गया उनको लूटनेके लिये गये कि इस मौकेमें इनको खानेकी चीज मिल जायगी तो अधिक दाम दे देंगे। वस्तुका जितना दाम है उससे एक रुपयेका सवा या डेढ़ा रुपया कमानेकी आशासे लाखों रुपयेका गल्ला मँगाया। दान देनेवाले भाईने कहा देखो यहाँ बड़ा भारी अकाल पड़ गया है, बड़ी भारी बाढ़ आ गयी है ऐसी परिस्थितिमें आपलोग यश लें और इनकी मदद करें जितनी इच्छा हो। दबाव डालकर किसीसे १०० रुपये, किसीसे ५० रुपये, किसीसे २० रुपये, इस तरहसे दो-चार हजार रुपया इकट्ठा कर चीजें खरीदकर उन्हें बाँट दिया और एक भाई जो वहाँ १०,००० रुपये लेकर लोकोपकारकी दृष्टिसे व्यापार करनेके लिये आया और गल्ला खरीदा तथा लोगोंको लागतभावमें बेचने लगा। अब दूसरेका गल्ला कौन ले। परिणाम यह हुआ कि जो बहुत-से आदमी चावल, गेहूँ, मूँग, चना मँगा रखे थे वे बेचारे रोते ही रह गये। आखिरमें उनको भी सस्ते भावमें बेचना पड़ा। गल्लेको वापस ले जायँ तो आने-जानेका खर्च तो लग ही जायगा। यह घाटा तो पड़ ही जायगा। उन्होंने सोचा—वापस ले जानेकी अपेक्षा तो यहाँ सस्ता बेचना ही अच्छा है। दूसरे लोगोंने कुछ नुकसान सहकर अपना गल्ला बेच दिया। उनका उद्देश्य था

कि एक रुपयेका सवा रुपया, डेढ़ रुपया दाम लेंगे सो नहीं मिला। निष्कामभावसे कर्म करनेवाला जो १०,००० का गल्ला ले गया था, वह खरीद-भावमें बेचकर सब काम-काज करके अपना १०,००० घर लेकर वापस आ गया, और एक भाई १०,००० खर्च करनेके लिये ले गया था वह खर्च करके आ गया। उन दोनोंमें सबसे पहले मुक्ति उसकी होगी जो १०,००० रुपये वापस लेकर आ गया था, क्योंकि इसने जब सस्ते भावसे अनाज बेचा तो दूसरे जिन लोगोंने लोगोंको लूटनेके लिये लाखों रुपयोंका गल्ला इकट्ठा किया था। उनको भी कम भावमें बेचना पड़ा। घरमें घाटा लग गया। पहले चंदा नहीं दिया और इस प्रकारसे चंदा देना पड़ा। लाखों रुपयोंका जनताको जो लाभ हुआ उसका श्रेय किसे है? इसका श्रेय उसे है जो दस हजार रुपया लेकर आया था, खरीदभावमें माल बिक्री किया फिर १०,००० अपने घर राजी-खुशी लेकर चला गया, उसको जो लाभ हुआ वह लाभ १०,००० रुपये दान करनेवाले भाईको नहीं हुआ। क्योंकि उसने तो दान कर दिया। एक-एक आदमियोंको १-१रुपये दान दिया तो दस हजार आदमियोंको सुख पहुँचा दिया। इस भाईने तो इस प्रकार भाव कम कर दिया कि दूसरोंको बाध्य होकर कम दाममें बेचना पड़ा। आपके सामने यह युक्ति पेश की। जैसे हमलोग वैश्य हैं, हमने लोगोंको बतलाया—कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य वैश्यका स्वभाव है। '**कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।**' गीताके १८वें अध्यायके ४४वें श्लोकके पूर्वार्द्धमें वैश्यके धर्म बतलाये हैं। उत्तरार्धमें यह बात कही कि शूद्रके लिये क्या कर्म है। शूद्रका कर्म है—सेवा ही करना। ऐसे उसके पूर्वमें ४३वें श्लोकमें क्षत्रियका धर्म बतलाया कि क्षत्रियको किस प्रकारसे अपना जीवन बिताना चाहिये और १८वें अध्यायके ४२वें श्लोकमें ब्राह्मणोंका धर्म बतलाया। आगे चलकर भगवान्ने कहा—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(१८। ४६)

जिस परमात्मासे यह संसार उत्पन्न हुआ है, जो परमात्मा इस संसारमें व्यापक है उस परमात्माको अपने-अपने कर्मोंके द्वारा पूजकर मनुष्य सिद्धिको प्राप्त हो जाता है, यानी परमगतिको प्राप्त हो जाता है। वैश्यको बहुत भारी सुगम उपाय बताया कि उसे किस प्रकार अपना व्यवहार करना चाहिये। यदि युक्ति समझमें आ जाय तो बहुत जल्दी उसका उद्धार हो जाय, कोई विलम्बका काम नहीं है। इसीलिये भगवान् स्वयं गीताके दूसरे अध्यायके ४०वें श्लोकमें कहते हैं—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

अर्जुन! मैं तुम्हें जो यह परमधर्म बतला रहा हूँ उसे तुम ध्यानसे सुनो। निष्कामभावसे पालन किये हुए निष्काम धर्मके आरम्भका नाश नहीं होता। जैसे कोई आदमी खेती करे तो पाला पड़नेसे भी खेती नष्ट हो जाती है या टिड्डी आकर पड़ाव डालें तो खेती नष्ट कर देते हैं या कोई कीड़ा लग जाय तो खेती नष्ट हो जाती है। किन्तु यह बात निष्काम कर्मके विषयमें नहीं है, वह सदा कायम रहता है। सकाम कर्म तो अपना फल देकर शान्त हो जाता है किंतु निष्काम सदा कायम रहनेवाली चीज है, वह नित्य है, वह अविनाशी योग है—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्। (गीता ४। १)

सृष्टिके आदिमें सूर्यभगवान्‌के लिये मैंने यह अविनाशी योग कहा, जिसका कभी विनाश नहीं होता। यदि कोई भी आदमी किसीकी सेवा किसी कामनासे, मान, बड़ाईको प्राप्त

करनेकी इच्छासे करता है तो उसका फल मिलकर वह शान्त हो जाता है, किंतु यदि निष्कामभावसे सेवा करे, वह कायम रहता है। इसके आरम्भका कभी नाश नहीं होता। इसमें 'प्रत्यवाय-दोष' भी नहीं लगता। न करनेसे पाप लगे ऐसी बात नहीं, इस वास्ते इसमें प्रत्यवाय है ही नहीं। इसलिये भगवान् तुम्हें निष्काम कर्म करना होगा, बाध्य नहीं करते। अपनी आत्माके उद्धारकी इच्छा हो तो करो।

'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥'

थोड़ा भी निष्काम कर्मयोगका पालन महान् भयसे तार देता है। निष्कामभावसे व्यापारकी बात बतलायी। अब गौओंकी सेवाकी बात बतलायी जाती है—इस समय गौओंपर बड़ा भारी संकट है। इसलिये गौओंको रखकर डेयरी फार्म खोलकर जिस प्रकार गौओंको सुख मिले, आम जनताको सुख मिले, मनुष्योंको, पशुओंको, सबको सुख मिले, इस उद्देश्यसे गौओंकी सेवा करें। रुपया कमानेके उद्देश्यसे नहीं। गोधनकी वृद्धिके लिये प्रयत्न करें, डेयरी खोलें, गोपाल-मण्डल खोलें, मतलब यह कि जिससे गायको सुख मिले और भाई लोगोंको दूध मिले। गौओंकी सेवा और भाइयोंकी सेवा निष्कामभावसे करें। अपनेको कोई नफा नहीं चाहिये, इस उद्देश्यसे करे और केवल मात्र संसारके हितके लिये ऐसा निःस्वार्थ-भावसे—निष्कामभावसे करे। जिससे संसारमें गोधन खूब बढ़े। सबको सुख मिले, इस उद्देश्यसे गौओंकी सेवा करे। तीसरी बात है कृषि, वैश्यके लिये खेती करना, खेतीके विषयमें एक बीघेमें अधिक-से-अधिक अनाज पैदा हो इस प्रकार खेती करें। ऐसी युक्ति निकालें कि बीज पुष्ट हो, खेती उर्वरा हो तो अधिक अनाज उपजे। थोड़ी जगहमें ज्यादा अनाज पैदा हो। इस प्रकारके तरीकेसे खेती करे, खेतीमें जो चीज पैदा हो वह बढ़िया हो, दामी हो, अधिक मात्रामें पैदा

हो। इस प्रकार खेती करके गरीब भाइयोंको यह बात समझाकर सिखला दें कि इस प्रकार खेती करनेसे ज्यादा लाभ होता है।

धान पकनेके बाद चिड़ियाँ चुगकर अनाज कच्चा ही न खा जायँ इसकी स्वयं खूब रखवाली करनी चाहिये। खेती निःस्वार्थ-भावसे करनी है, दूसरे किसानोंको यह बात सिखलानी है कि इस प्रकार खेती करनेसे थोड़ी जमीनमें ज्यादा अनाज पैदा हो सकता है। दामी और पुष्ट हो सकता है। इस प्रकार किसानोंको सिखायें तो उनका उपकार हो। वे भी उसी प्रकार करने लगें। खेतीमें जो धान पैदा हो उसे कम-से-कम दामोंमें बेचें, क्योंकि रुपया तो कमाना नहीं है। वैश्यके लिये कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य बतलाया। कृषि, व्यापार और गौओंका पालन यदि निष्काम-भावसे करे तो उसका कल्याण हो सकता है—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(१८।४६)

भगवान् कहते हैं कि अर्जुन! जिस परमात्मासे संसार उत्पन्न हुआ है, जो परमात्मा इस संसारमें व्यापक है, उस परमात्माको अपने-अपने कर्मोंके द्वारा पूजकर मनुष्य परम सिद्धिको प्राप्त होता है, यानी परमात्माको प्राप्त हो जाता है। 'अपने-अपने कर्मोंके द्वारा पूजना अर्थात् यह संसार परमात्माका स्वरूप है और सारे प्राणियोंमें परमात्मा व्यापक है। इसलिये सारे प्राणियोंकी सेवा भगवान्‌की सेवा है। यह सारा संसार भगवान्‌से ही उत्पन्न हुआ है, भगवान् इसमें व्यापक हैं, इसलिये वह भगवान्‌का ही स्वरूप है ऐसा समझकर सबमें नारायण-बुद्धि करके अपने-अपने कर्मोंके द्वारा सबकी सेवा करे तो भगवान्‌की सेवा-पूजाके प्रभावसे उसे परम शान्ति, परम सिद्धिकी प्राप्ति हो जाती है। जैसे वैश्यके लिये बतलाया, वैसे ही ब्राह्मण अपने कर्मोंके द्वारा

भगवान्‌की सेवा करके परमगतिको प्राप्त हो जाता है। क्षत्रिय अपने कर्मोंके द्वारा, शूद्र अपने कर्मोंके द्वारा भगवान्‌की सेवा करके परमगतिको प्राप्त हो जाता है। सबकी सेवा भगवान्‌की सेवा है—ऐसा विचारकर सबमें भगवद्‌बुद्धि करे और सबमें नारायण-बुद्धि करके निष्काम-भावसे सबकी सेवा करे। जैसे तुलाधार वैश्य—जिसकी कथा पद्मपुराणमें इस प्रकारसे आती है—

तुलाधार नामक वैश्यके यहाँ एक नरोत्तम नामका ब्राह्मण गया। उसके वहाँ जाकर देखा कि तुलाधार व्यापार कर रहा है—नरोत्तमने कहा कि मैं आपके पास उपदेश ग्रहण करनेके लिये आया हूँ। तुलाधार वैश्यने कहा—ग्राहकोंकी भीड़ रातके नौ बजेतक लगी रहेगी, उसके बाद मुझे अवकाश मिलेगा, उस समय जो कुछ पूछियेगा वह कहूँगा। यदि आपको इतनी देर ठहरनेका अवकाश न हो तो यहाँसे थोड़ी दूरपर एक सज्जन अद्रोहक नामके महात्मा पुरुष हैं उनके पास आप जाइये, वे आपको उपदेश कर सकते हैं। यह सुनकर इस ब्राह्मणको थोड़ा क्रोध आ गया, बोला—मैं तुम्हारे घर आया तुमसे उपदेश ग्रहण करने और तुम्हें मुझसे बात करनेकी फुर्सत नहीं है। इसपर तुलाधारने कहा—महाराज! आपको जो आकाशवाणी हुई थी वह मुझे मालूम है। जब वह तप करता था, तब उसकी धोती आकाशमें सूखा करती थी और अपने-आप ही सिमटकर उसके पास आ जाती थी। इससे उसके मनमें यह अभिमान हो गया कि मैं बड़ा तपस्वी हूँ। एक समय कोई बगुली आकाशमें उड़ती जा रही थी उसने उसके ऊपर बीट कर दी। नरोत्तमको क्रोध आ गया, वह उसके क्रोधसे भस्म होकर नीचे गिर गयी। अब नरोत्तमके दिलमें यह अभिमान आ गया कि मेरे समान तपस्वी कौन है। मैं जिसे चाहूँ भस्म कर दूँ। उसके इस प्रकारके

अभिमानको देखकर आकाशवाणी हुई कि नरोत्तम! तुम क्यों अभिमान करते हो, ऐसा अभिमान तो मूक चाण्डाल भी नहीं करता, जैसा तू करता है, उसकी तपस्याके मुकाबले तुम्हारी तपस्या कुछ भी नहीं है। यह सुनकर नरोत्तम मूक चाण्डालके पास गया। मूक चाण्डालके बाद पतिव्रता स्त्रीके घर गया, तदनन्तर वह तुलाधारके यहाँ पहुँचा और उससे बगुलीके जलनेकी बात बिना किसी जानकारीके बतलाये जानेपर इसकी आँख खुली और तुलाधारकी जानकारी करके जब वह चलने लगा तब भगवान् ब्राह्मणके वेषमें उसके साथ-साथ चलने लगे। नरोत्तमने यह नहीं समझा कि ये भगवान् हैं। भगवान्ने कहा कि अद्रोहकके घर चलो। उनका घर मैं जानता हूँ। भगवान् किसको नहीं जानते। वहाँ ले गये। रास्तेमें पूछा कि यह बनिया तो खाद्य पदार्थ तेल, नमक, घी, बेचता है, पर इसे ज्ञान कैसे है। भगवान् बोले—यह व्यापारमें सबके साथ सत्य व्यवहार, समान व्यवहार करता है, अपना कर्तव्य मानकर करता है, रुपयोंके लिये नहीं। उसीका यह प्रताप है। तदनन्तर भगवान् आगे आकर प्रकट हो गये और साफ बतला दिया कि जो पहले देखा—जहाँ-जहाँ हमलोग गये उन सबके घरमें ब्राह्मणका रूप धारण करके मैं नित्य वास करता हूँ। ये सब मेरे परमधामको जायँगे। इन सबको पूर्ण ज्ञान है। अन्तमें उसके देखते-देखते सब-के-सब पाँचों भगवान्के परमधाम चले गये। मूक चाण्डाल, पतिव्रता स्त्री, तुलाधार वैश्य, सज्जन अद्रोहक और ईश्वरकी भक्ति करनेवाला 'विष्णुदास' जो भगवान्की पूजा करता था, सभी भगवान्के विमानमें बैठकर नरोत्तमके देखते-देखते परमधाम चले गये। भगवान्ने कहा कि नरोत्तम! तुम मेरी आज्ञा मानकर अपने माता-पिताकी सेवा करो, तेरे माता-पिता अंधे तथा बूढ़े हैं। एक दिन मैं तेरे यहाँ भी आऊँगा, सबको वैकुण्ठ ले जाऊँगा। यह

कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। इस प्रकार हमलोग भी तुलाधार वैश्यकी भाँति व्यापार करें तो इस कलियुगमें उसका माहात्म्य और ज्यादा है, क्योंकि इस समय झूठ, चोरी, बेईमानी, कपटका बाजार खूब गरम है। नाना प्रकारकी चोरी, नाना प्रकारके घूस, झूठ लेना, झूठ देना, झूठ भोजन, झूठ चबेना सब झूठ-ही-झूठ है। ऐसी परिस्थितिमें यदि निष्काम-भावसे निष्काम कर्मयोगका पालन किया जाय तो बड़ा ही आनन्द है, बड़ा मजा है। हमारी तो यह धारणा है कि आज इस बुद्धिसे यदि रुपयोंका लोभ छोड़कर अपना कर्तव्य समझकर काम करें तो उसका व्यापार बड़े उच्च कोटिका हो सकता है। यदि किसीका न्याययुक्त रुपया कमानेका ध्येय है तो इस प्रकारके ध्येयसे व्यापार करनेवाला पापसे तो बच जाता है किंतु उससे मुक्ति नहीं होती। हाँ पाप नहीं छू सकता। यदि कोई पाप करे तो पाप छुए, जहाँ न्याय है वहाँ पाप पासमें ही नहीं आता। इससे तो यह भी अच्छा है कि जैसे अपने यहाँ स्वर्गाश्रममें दूसरोंको किस प्रकार अधिक-से-अधिक आराम मिले। यह दृष्टि रखनी चाहिये। कोई भी भाई यदि कोई चीज माँगता है तो उसे वह चीज मँगाकर दे दी जाती है। केवल लक्ष्य यह रहे कि इन लोगोंको आराम मिले। रुपयेका लोभ बिलकुल न रहे। रुपयोंका लोभ न रहकर भी यदि उसमें मान-बड़ाईकी इच्छा है तो वह निष्काम नहीं है। यदि सब लोग यह कहें कि वाह साहब वाह देखो, कैसा आराम कर रखा है, बहुत ही बढ़िया आराम कर रखा है, और उसे यह बात प्यारी लगे, तो वहाँ आपने जो अच्छा काम किया, आपकी बड़ाई हुई, आप उसमें फूल गये तो आपको उसका फल यहीं मिल गया। अब परलोकमें क्या मिलेगा? खाता यहीं बराबर हो गया। मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाके लिये किया था मान-बड़ाई, प्रतिष्ठा मिल गयी। इसकी भी इच्छा नहीं रखे

तथा कोई मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा करे, वह बुरी मालूम दे, उसमें लज्जा मालूम दे, उसे सुनना नहीं चाहे और इसपर भी फिर अभिमान आ जाय कि देखो मैंने लोगोंके हितके लिये यह काम किया, मैंने यह किया तो इसमें कर्तापनेका अभिमान आया। निष्काम कहाँ रहा। अभिमान भी नहीं आना चाहिये। और यह भी अपनेको नहीं समझना चाहिये कि मैं निष्कामी हूँ। निष्कामी होकर अपनेको निष्कामी माने तो उसके लिये वह कलंक है, वह धब्बा है। और निष्काम कर्म न करके अपनेको कहे कि मैं निष्कामी हूँ वह तो दंभी है, पाखण्डी है, वह तो घोर नरकमें जायगा। निष्काम कर्म करके अपनेको निष्कामी माने तो उसका निष्कामपनेका लाभ क्षय हो जाता है। अभीतक अपना जो काम हुआ वह सर्वथा निष्काम नहीं है। सर्वथा निष्काम हो तो वह टकसाल बन जाय और उसके तमाम सम्पर्की निष्काम बन जायँ। जैसे रुपयोंके टकसालमें रुपये छपते हैं तो बहुत-से आदमी रुपयोंवाले हो जाते हैं। सेवा करनेवाले, काम करनेवाले तो हो ही जाते हैं। वह काम इस प्रकार हो जिससे लोगोंका हित हो। उसके ऊपर जितना खर्चा लगे उतना ही खर्चा चढ़ाकर विक्री किया जाय और मूलधन कायम रह जाय किंतु उसके अंदर सभी प्रकारके छल-छिद्र, स्वार्थ, झूठ-कपटका त्याग हो। उसमें विषमता नहीं रहनी चाहिये। सबके साथ समान-व्यवहार करे। चाहे अपने घरका हो, चाहे अपना बाप हो, चाहे कोई अनजान आ जाय सबके साथ एक ही व्यवहार करे—समताका व्यवहार करे, इसीको **'समत्वं योग उच्यते'** समता ही योग है कहा गया है।

'योगः कर्मसु कौशलम्' कर्मोंमें जो योग है, समता है, वही कुशलता है, चतुरता है, चतुरता उसीका नाम है जिस साधनके द्वारा मनुष्यका कल्याण हो जाय। संसारमें वही मनुष्य चतुर है

जिस कामके लिये आया है उसी कामका सम्पादन करे। मनुष्यका शरीर परमात्माकी प्राप्तिके लिये मिला है, जो मनुष्य-शरीरको प्राप्त करके परमात्माकी प्राप्ति कर लेता है वही चतुर है, बाकी सब मूर्ख हैं। निष्कामभाव ही असली चतुराई है। जिससे आत्माका कल्याण हो जाय, वही कुशलता है। आपको यह बात खूब ध्यान देकर समझनी चाहिये और यथाशक्ति काममें लानेका प्रयत्न करना चाहिये। प्रथम उच्च कोटिका निष्काम कर्म कर्ताकी मुक्ति करता है। फिर आगे जाकर और विशेषता आ जाती है। उसके कामको देखकर दूसरे लोग मुग्ध हो जायँ और कहें कि ओहो! देखो कैसा उत्तम दर्जेका व्यापार है, व्यापारको देखकर उसपर छाप पड़े कि मैं भी ऐसा ही बनूँ और वह फिर वैसा ही बन जाय तो हजारों आदमी बन जायँ। ऐसा कोई व्यापारी हो तो वह तुलाधारसे भी बढ़कर हो सकता है। तुलाधारकी तो खुदकी मुक्ति हो गयी, कल्याण हो गया; किंतु उससे बढ़कर वह पुरुष है जिसके दर्शनसे, भाषणसे, स्पर्श, वार्तालापसे दूसरे भी मुक्त हो जायँ। ऐसा भी बन सकता है। जितना ही उसके अंदर निष्काम-भाव है, जितना ही उसमें अपनेपनका त्याग है उतना ही उसके व्यवहारमें, उसके अन्नमें—सब चीजोंमें उसकी निष्कामता झलकने लग जाती है, उसका व्यवहार बड़ा उज्ज्वल हो जाता है जैसे अन्धकारमें रोशनी हो जाय और वह स्थान प्रकाशित हो जाय। उसका भी व्यापार इसी प्रकार दुनियामें प्रकाशित हो जाता है, फैल जाता है। वह दुनियाकी दृष्टिमें आ जाता है कि देखो उसका कैसा उच्च कोटिका व्यवहार है। चमकने लग जाता है। उसका वही चमकना दृष्टिगोचर हो जाय तो सबके ऊपर उसकी छाप पड़ती है। वह सोचता है कि मैं भी वैसा ही बन जाऊँ। ऐसे पुरुषके घर यदि हम कभी अतिथि होकर चले जायँ,

भगवान्‌की कृपासे उनके घरका प्रसाद हमें मिल जाय तो उससे अन्त:करण ही शुद्ध हो जाय।

यह एकदम प्रत्यक्ष बात है कि पापीका अन्न खानेसे बुद्धि पापमय हो जाती है और महापुरुषका अन्न खानेसे बुद्धि शुद्ध हो जाती है। न्यायसे उपार्जित द्रव्यकी महिमा अपार है। '**आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः**' भोजनकी शुद्धिसे अन्त:करणकी शुद्धि हो जाती है। इसलिये उसका भोजन प्रसाद है।

मन्दिरोंमें अन्नकूटके प्रसादकी वह शक्ति नहीं जो अन्त:करणको शुद्ध कर दे। अपनी भावनासे कर दे यह बात अलग है, श्रद्धासे कर दे यह बात अलग है, किंतु स्वाभाविक ही उस पदार्थमें वह शक्ति नहीं है जो शक्ति न्यायसे उपार्जित किये गये द्रव्यमें है। उसमें जो शक्ति है वह अलौकिक शक्ति है। वह स्वाभाविक शक्ति है। इसके विपरीत पापीके अन्नमें उतना ही दोष है। भगवान् श्रीकृष्णजीने फटकारकर दुर्योधनसे कहा था कि तेरा अन्न दूषित है इसलिये मैं तुम्हारे घर भोजन नहीं करता। भीष्मपितामह कितने उच्च कोटिके पुरुष थे। युधिष्ठिर जब उपदेश लेनेके लिये गये थे उस समय भीष्मजी यह उपदेश दे रहे थे कि जिस सभामें अन्याय होता हो और अपनेमें सामर्थ्य हो तो उस अन्यायको अपने बलसे मिटा देना चाहिये। यदि सामर्थ्य न हो तो वहाँसे उठकर चला जाना चाहिये। यह बात सुनकर द्रौपदी हँसी। वे बोले—बेटी! मैं इस बातको समझ गया कि सभाके बीच जब तुम्हारा चीर उतारा जा रहा था और मैं वहाँ मौजूद था और मेरी सामर्थ्य भी थी कि मैं उसे रोक देता, रोकनेकी मेरेमें शक्ति थी। मैं उस शक्तिको भी काममें नहीं लाया और कम-से-कम यह भी नहीं किया कि उस सभासे उठकर चला जाऊँ, उठकर भी मैं नहीं गया। जैसा मैं व्याख्यान देता हूँ वैसा काम मैंने नहीं किया

अतः तेरा हँसना ठीक है। किंतु बेटी! बात यह है कि मैं दुर्योधनका अन्न खा चुका था, इसलिये मेरी बुद्धि पापिष्ठ हो गयी थी। पापीका अन्न खानेसे मेरी बुद्धि पापमय हो गयी। इसलिये मैं उस समय तुम्हारी रक्षा नहीं कर सका, तुम्हारा हँसना उचित है। पापीका अन्न खानेसे भीष्म-जैसे पुरुषोंकी बुद्धि नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है तब औरोंकी तो बात ही क्या है। इसी प्रकार धर्मात्माका अन्न, माने न्यायसे उपार्जन किये द्रव्यके अन्नसे बुद्धि शुद्ध और पवित्र हो जाती है। किन्तु ऐसा अन्न मिले कहाँ। हजारों, लाखों, आदमियोंमेंसे कोई एक ऐसा पुरुष होता है जो परमात्माकी प्राप्तिके लिये व्यापार करता है।

नारायण! नारायण!! नारायण!!!